धर्मायण

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

मूल्य : 45 रुपये

अंक 127

माघ,

2079 वि. सं.

वायु-तत्त्व विशेषांक

वायुदेवता की विविध मूर्तियाँ

(सभी चित्र डा. श्रीकृष्ण जुगनू के सौजन्य से प्राप्त)

धर्मायण

Title Code–BIHHIN00719

आलेख –सूची

1. **नवोपलब्ध ग्रन्थ 'वायुवाद' का परिचय**- सम्पादकीय 3
2. **आयुर्वेद में वायु का विभु, लौकिक एवं शरीरस्थ स्वरूप** - डा. विनोद कुमार जोशी 6
3. **प्राणवायु और उसका प्रभाव** - श्री अंकुर पंकजकुमार जोषी 11
4. **परमात्मा की प्राणशक्ति को प्रणाम** - डा. मयंक मुरारी 14
5. **व्यावहारिक योग में वायु-साधना** - श्रीमती मञ्जरी बिनोद अग्रवाल 23
6. **वैशेषिक दर्शन के अनुसार वायुतत्त्व** - डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य 28
7. **वायु देवता का उद्भव और विकास (पुस्तकांश)** - डा. गयाचरण त्रिपाठी 31
8. **वायुदेव एवं वायुपुत्र हनुमानजी** - श्री महेश प्रसाद पाठक 36
9. **वायुदेव के तृतीय अवतार आनन्दतीर्थ मध्वाचार्य** - पं. शम्भुनाथ शास्त्री 'वेदान्ती' 45
10. **वायुतत्त्व और हमारा असंतुलित हो रहा पर्यावरण** - डा. राजेन्द्र राज 50
11. **वायु, पर्यावरण की सुरक्षा और साहित्य** - सुश्री पुनीता कुमारी श्रीवास्तव 54
12. **कवियों की दृष्टि में वायु : सन्दर्भ 'जुही की कली'** - डॉ. विजय विनीत 58
13. **गायत्री-साधना से विभिन्न उपासना परम्परा का उदय** - श्री महेश शर्मा 'अनुराग' 62
14. **'उत्तररामचरित' की रामायण-कथा** -आचार्य सीताराम चतुर्वेदी 65
15. **अवध क्षेत्र में 19वीं शती की विवाह-विधि**- 'रीतिरत्नाकर' से संकलित 68
16. **पुस्तक समीक्षा**- 'व्याख्या', ले.- मार्कण्डेय शारदेय 73

अन्य स्थायी स्तम्भ 75

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ–संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 127
माघ, 2079 वि. सं.
7 जनवरी-5 फरवरी, 2023ई.

प्रधान सम्पादक
आचार्य किशोर कुणाल

सम्पादक
भवनाथ झा

पत्राचार :
महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना–800001, बिहार
फोन: 0612–2223798
मोबाइल: 9334468400

E–mail:
dharmayanhindi@gmail.com

Website:
www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

Whatsapp:
9334468400

मूल्य : 45 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 126, पौष, 2079 वि.सं.

'धर्मायण' पत्रिका के नित नवीन अंक की प्रस्तुति केलिए सम्पादक को अशेष शुभकामनाएँ। मैं विगत तीन वर्षों से इस पत्रिका के सभी अंकों का अध्ययन कर रहा हूँ। अब इतना बेचैन हो गया हूँ कि विना पाठकीय प्रतिक्रिया लिखे मन को शान्ति नहीं मिल रही है। 'आगम-विशेषांक' को जिस प्रकार उदार मन से परोसा गया है, वह तो अद्भुत है। हमारे अंदर भरा गया था कि 'आगम' का अर्थ तंत्र-मन्त्र, जादू-टोना, ढकोसला होता है। पर अब लग रहा है कि यह तो पूरे 2500 वर्षों की भारतीय ज्ञान-परम्परा है। यह पद्धति हमारे पूर्वजों ने समाज के सभी लोगों को धर्म से जोड़ने केलिए विकसित की थी! अद्भुत!!

भारत भर में जितनी धार्मिक पत्रिकाएँ निकलतीं हैं, उनमें 'धर्मायण' की सबसे बड़ी विशेषता मैं समझता हूँ कि यह किसी एक सम्प्रदाय से सम्बद्ध नहीं है। सारे सम्पादक जहाँ अपने-अपने सम्प्रदाय की दुहाई देने में लगे रहते हैं, वहाँ झाजी ने भारत की पूरी ज्ञान-परम्परा को पाठकों के सामने परोसने का कार्य किया है। इसमें कहीं आहोअहमिका नहीं है, सारी विचारधाराएँ उच्च हैं, मानव कल्याणकारी हैं। पाठक इस पत्रिका के माध्यम से जान रहे होंगे कि भारत की विविध धार्मिक धाराएँ आखिर एक ही तत्त्व की खोज कर रही है और वह है- मानव कल्याण। जहाँ कहीं आदर्श है, उदारता है, सम्पादक की वहाँ दृष्टि जाती है और वे एक विशेषांक की योजना बना लेते हैं। लोक-विमर्श के प्रति इनका झुकाव 'सबको' समेटकर साथ ले चलने की प्रवृत्ति के कारण स्वाभाविक है।

सम्पादक भवनाथ झाजी को शुभकामना देता हूँ कि ये इसी प्रकार व्यापक अध्ययन कर विशेषांकों की योजना बनाते रहें और हम पाठकों को अखण्ड, विराट्, उदार एवं जनकल्याणपरायण भारत के गौरवमय अतीत से परिचित कराते रहें।

जय श्रीमन्नारायण!

विष्णुकिंकर उपाध्याय
पन्नगकुटीरम्, घर्मोली, हिमाचल प्रदेश।

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं.– +91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

धर्मायण का अगला अंक **संवत्सर विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। भारत में अनेक प्रकार के संवत्सर प्रचलन में हैं। पूर्वोत्तर भारत के पंचांगों में कलि-संवत्सर, शक, विक्रम, लक्ष्मण संवत्, बंगला संवत्, नेवारी संवत् तथा ईसवी सन् प्रचलित हैं। विभिन्न पाण्डुलिपियों तथा शिलालेखों में कई अन्य प्रकार की भी वर्षगणना मिलती हैं। फाल्गुन के अन्तिम दिन पूर्णिमा के होलिका दहन को संवत् जलाना भी कहते हैं, तो क्या यह किसी संवत्सर का अन्तिम दिन है। यदि ऐसा है तो फिर उसके अगले ही दिन से नववर्ष आरम्भ होना चाहिए। ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिन पर विवेचन अपेक्षित है।

विद्वानों से निवेदन है कि इन विषयों पर अपना मत आलेख के रूप में कर अनुगृहीत करेंगे।

नमस्कार महोदय। आपके सम्पादकीय पढ़ने से यह आगम-डम्बर का पता चला। नहीं जानती थी। और सम्पादकीय से भी यह लगता है कि आगम के ऊपर और कितना काम हो सकता है।

-डा. ममता मिश्र दाश

अध्यात्म जगत का स्वर्ग है ये पत्रिका। संपादक मंडल और विद्वान लेखकों का हार्दिक अभिनंदन!

-महेश शर्मा, उज्जैन

नवोपलब्ध ग्रन्थ 'वायुवाद' का परिचय

सम्पादकीय

—भवनाथ झा

वैशेषिक दर्शन में वायु के नित्य तथा अनित्य दोनों स्वरूपों पर विचार किया गया है। इस विषय में पाठक इसी अंक में विशेष आलेख में विस्तार के साथ पढ़ेंगे। यहाँ एक प्रश्न अन्नम्भट्ट ने 'तर्कसंग्रह' के स्वकृत भाष्य 'दीपिका' में उठाया है कि क्या वायु प्रत्यक्ष है? वायु के स्पर्श का हम अनुभव तो करते हैं, किन्तु उसे तबतक प्रत्यक्ष नहीं माना जा सकता है, जबतक कि उसमें रूप न हो। वायु रूपरहित है, अतः वह प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

वैशेषिक के प्रवर्तक कणाद ने प्रत्यक्षता केलिए तीन आवश्यक शर्तें रखीं है- 1. महत् परिमाणवत्त्व, 2. एक से अधिक द्रव्यों से निर्मिति तथा 3. रूपवान् होना-

महत्यनेकद्रव्यवत्वात् रूपाच्चोपलब्धिः।[1]

अतः प्राचीन नैयायिक इसे प्रत्यक्षगम्य न मानकर अनुमेय मानते हैं, किन्तु नवीन नैयायिक इसे प्रत्यक्षगम्य मानते हैं। व्योमशिवाचार्य ने रूप के विना भी स्पार्शन-प्रत्यक्षता स्वीकार की है। वस्तुतः यहाँ वायु का विवेचन न होकर प्रत्यक्षता का अधिक विवेचन किया गया है, स्पार्शन प्रत्यक्षता को भी प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध किया गया है।

जैन-मत भी इसीके समर्थन में है। यदि चक्षु से नहीं देख पाने के कारण हम रूप का अभाव मानेंगे, तो तब तो परमाणु को भी आँखों से दिखाई न पड़ने के कारण रूपरहित मानना होगा। इसलिए वायु रूपवान् है, क्योंकि वह स्पर्शवान् है।

इसी शास्त्रार्थ पर एक ग्रन्थ की रचना 1680ई. के आसपास की गयी। इसका नाम 'वायुवाद' है। इस ग्रन्थ के प्रणेता रामभद्र ने आत्मा तथा वायु दोनों द्रव्यों को प्रत्यक्ष माना है। यह ग्रन्थ अभीतक अप्रकाशित ही नहीं, विद्वानों के द्वारा अज्ञात भी है। इसकी दो उपलब्ध पाण्डुलिपियों का विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

न्यायशास्त्र के अधीती विद्वान् डा. किशोरनाथ झा ने दूरभाष पर बताया कि अभीतक इस 'वायुवाद' ग्रन्थ के सम्बन्ध में विद्वन्मंडली में सूचना नहीं है, साथ ही वायु की प्रत्यक्षता का विचार भी न्याय-जगत् केलिए नवीन विवेचन है। उन्होंने इस पुस्तक के संपादन प्रकाशन की आवश्यकता भी बतलायी।

1 वैशेषिक सूत्र 4.1.6.

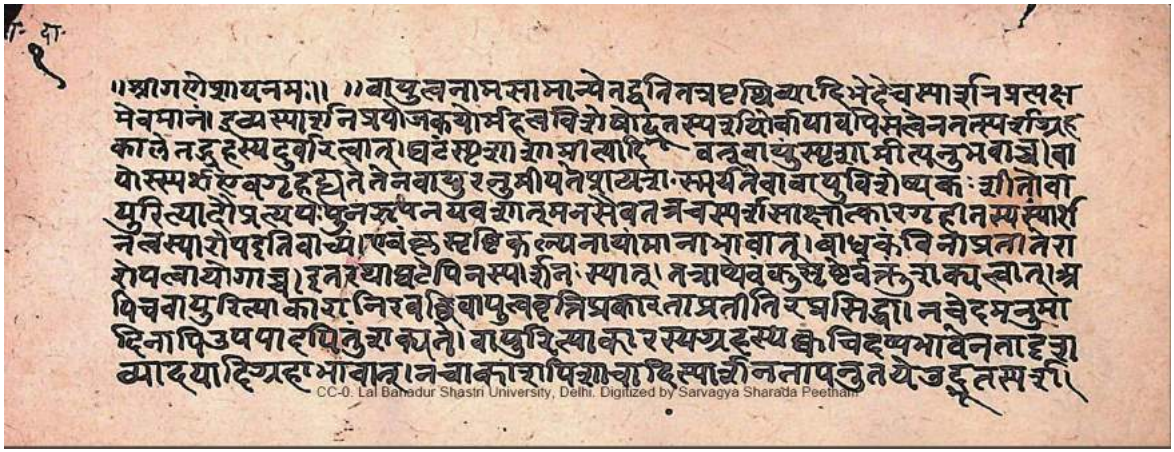
CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

वायुवाद ग्रन्थ के प्रथम पृष्ट की छाया

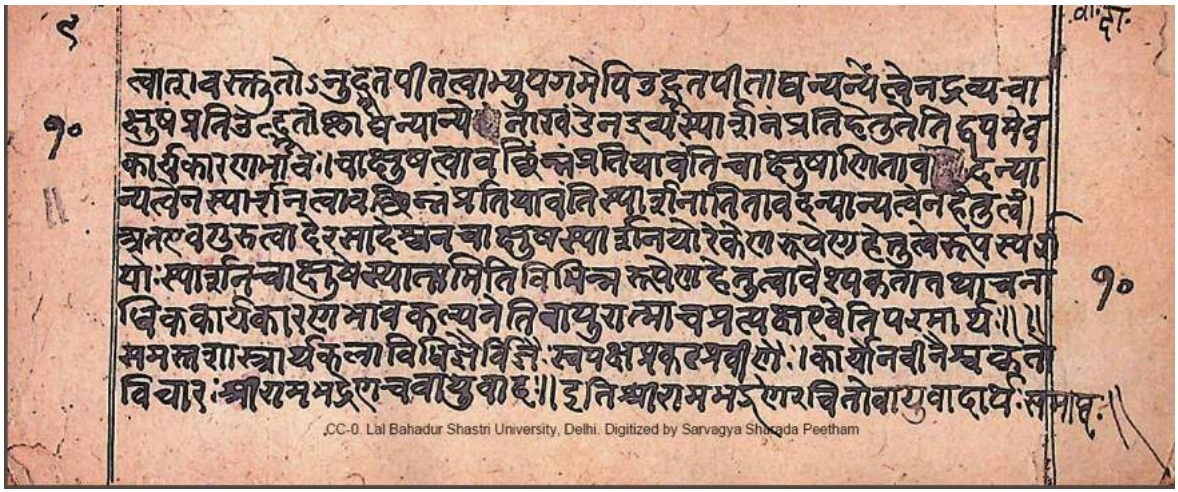
CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

वायुवाद ग्रन्थ के अन्तिम पृष्ट की छाया

यहाँ पर लाल बहादुर शास्त्री विश्वविद्यालय के संग्रह में उपलब्ध पाण्डुलिपि का विवरण दिया जा रहा है। यह पाण्डुलिपि Vayu Vadarth Manu 01 01 # 15 Lal Bahadur Shastri Sanskrit University के नाम से https://archive.org पर समग्र रूप से उपलब्ध है।

इस पाण्डुलिपि में 10 पत्र तथा 20 पृ. हैं। इसका आरम्भ इस प्रकार हुआ है-

श्रीगणेशाय नमः॥ वायुत्वनामसामान्ये तद्वति तत्र पृथिव्यादिभेदे च स्पार्शनप्रत्यक्षमेव मानं। द्रव्यस्पार्शनप्रयोजकयोर्महत्त्वविशेषोद्भूतस्पर्शयोर्वायावपि सत्त्वेन तत्स्पर्शग्रहकाले तद्ग्रहस्य दुर्वारत्वात्। घटं स्पृशामीत्यादिवत् वायुं स्पृशामीत्यनुभवाच्च।....

पाण्डुलिपि के अन्त में इस प्रकार पाठ है-

"अतएव गुरुत्वादेरसादेश्च च चाक्षुषस्पार्शनयोरेकेण रूपेण हेतुत्वे रूपस्पर्शयोः स्पार्शनचाक्षुषे स्यातामिति विभिन्न रूपेण हेतुत्वावश्यकता तथा च नाधिककार्यकारणभावकल्पनेति वायुरात्मा च प्रत्यक्ष एवेति परमार्थः॥

समस्तशास्त्रार्थकलाविधिज्ञैर्विज्ञैः स्वपक्षप्रकरप्रवीणैः।
कार्यो नवीनैश्च कृतो विचारः श्रीरामभद्रेण च वायुवादः॥
इति श्रीरामभद्रेण रचितो वायुवादार्थो समाप्तः॥"

इस ग्रन्थ के रचयिता रामभद्र के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ग्रन्थ के अन्तरंग प्रमाण से कुछ संकेत प्राप्त नहीं होता है। एक स्थल पर उन्होंने 'तातचरणास्तु' (पत्र सं. 6 ख, पंक्ति 7) का उल्लेख कर अपने पिता के मत को उद्धृत किया है, इससे इतना ही पता चलता है कि इनके पिता ने भी न्यायशास्त्र पर किसी पुस्तक की रचना की थी। भट्टाचार्य, दिनेशचन्द्र ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ नव्यन्याय इन मिथिला' में एक रामभद्र सार्वभौम का उल्लेख किया है। उनके अनुसार वे 'न्यायसिद्धान्तमंजरी' के प्रणेता महामहोपाध्याय भट्टाचार्य चूड़ामणि के पुत्र थे। उनकी रचनाओं में 'न्यायकुसुमांजलिकारिकाव्याख्या', 'न्यायरहस्य', 'गुणरहस्य', 'समयरहस्य', 'पदार्थतत्त्वटीका' का उल्लेख किया है।[2] दिनेशचन्द्र सरकार ने उन्हें जगदीश तर्कालंकार का गुरु माना है।[3] रामभद्र सार्वभौम के एक शिष्य जयराम न्यायपंचानन (1700ई.) भी माने गये हैं।[4]

म.म. सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने इन्हें भवनाथ तथा भवानी का पुत्र माना है। सम्भवतः उन्होंने 'कुसुमांजलिकारिकाव्याख्या' के आदि श्लोक के आधार पर लिखा हो। वास्तविकता है कि 'कुसुमांजलिकारिकाव्याख्या' की पाण्डुलिपि के 6ठे पत्र के प्रथम पृष्ठ पर **"इत्यन्तं शंकरमिश्रकृतं अतःपरं सार्वभौमीयम्"** लिखित मिला है। इस तथ्य का उद्भेदन सर्वप्रथम गोपीनाथ कविराज ने किया, जिसका उल्लेख दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य ने किया है।[5] शंकर मिश्र ने अपनी व्याख्या में पिता भवनाथ तथा माता भवानी का उल्लेख इस प्रकार किया है-

भवानीभवनाथाभ्यां पितृभ्यां प्रणमाम्यहम्।
यत्प्रसादादिदं शास्त्रं करक्षीरोपमं कृतम्॥

इस 'वायुवाद' की एक पाण्डुलिपि सरस्वती भवन पुस्तकालय में भी उपलब्ध है। पाण्डुलिपि संख्या 31995 है।[6]

पाण्डुलिपि के इस विवरण के आलोक में अपेक्षा है कि न्यायशास्त्र के विद्वान् इसका सम्पादन तथा अनुवाद करें ताकि वायु के स्वरूप पर एक विस्तृत विवेचन उपलब्ध हो सके।

***

2 Battacharya, Dineshchandra: History of navya-nyaya in Mithila, Mithilila Institute of Post-Graduate Studies and Research in Sanskrit Learning DARBHANGA, 1958, पृ 130-132.
3 *ivid:* p. 69
4 Mm. Satisachandra Vidyabhusana, A History Of Indian Logic, Motilal Benarasidas, 1920, p. 477.
5 Battacharya, Dineshchandra: opt.cit. p. 131.

आयुर्वेद में वायु का विभु, लौकिक एवं शरीरस्थ स्वरूप

डा. विनोद कुमार जोशी
एमेरिटस प्रोफेसर, द्रव्यगुण विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

व्यवहार में भी हम देखते हैं कि कुछ संकेंड केलिए यदि प्राणी को प्राण-वायु मिलना बंद हो जाये तो उसकी मृत्यु हो जाती है। इससे जीवन धारण में वायु महत्त्व स्पष्ट है। प्रकृति में भी वायु संधारण करता है, वह वाहक का कार्य करता है। ध्वनि का भी संवहन तभी संभव है, जब वहाँ वायु की उपस्थिति हो। वायु का एक नाम समीर है। जो भली-भाँति प्रेरित करता हो, वह समीर है, वही वायु है। आधुनिक शब्दावली में कहे तो जगत् का त्वरक यानी Accelerator वायुतत्त्व है। यही कारण है कि आयुर्वेद की भी प्राचीनतम संहिताओं में चरक तथा सुश्रुत ने शरीरस्थ वायु तथा प्रकृति में स्थित वायु पर विशद विवेचन किया है तथा अन्त में कहा है- वायुरेव भगवानिति। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है कि भारतीय परम्परा में एवकार का अर्थ अन्य का निषेध कतई नहीं होता है बल्कि 'एव' शब्द का प्रयोग पूर्णता तथा अनन्यता के अर्थ में होता है। आयुर्वेद के विद्वान् द्वारा लिखित यह आलेख शरीर में तथा प्रकृति में वायु के महत्त्व की स्पष्ट व्याख्या करता है।

आयुर्वेद के मौलिक ग्रन्थ चरक संहिता का प्रारम्भिक नाम अग्निवेश तन्त्र उल्लेखित है, जिसे पुनर्वसु आत्रेय के प्रमुख शिष्य अग्निवेश ने रचा। कालान्तर में चरक ने प्रतिसंस्कार किया और तब से चरक-संहिता नाम से प्रसिद्धि मिली। सूत्रस्थान के प्रथम अध्याय के अन्त में इसका उल्लेख इस प्रकार से है-

"इत्यग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते सूत्रस्थाने दीर्घञ्जीवितीयो नाम प्रथमोऽध्यायः।"

उक्त वाक्य सूत्रस्थान के सभी 30 अध्यायों के अन्त में दृष्टिगोचर होता है। अन्तिम 30वें अध्याय में आयुर्वेद की शाश्वतता इस प्रकार निर्दिष्ट है- यह आयुर्वेद शाश्वत कहा जाता है। यह अनादि होने से, अपने लक्षण के स्वभावतः सिद्ध होने से, भावों (सत् वस्तुओं) के स्वभाव के नित्य होने से (शाश्वत, नित्य) कहा जाता है-

"सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते, अनादित्वात् स्वभावसंसिद्धलक्षणत्वात् भावस्वभावनित्यत्वाच्च।"[1]

प्रथम अध्याय में वायु को पित्त एवं कफ के साथ शरीर दोष संग्रह कहे हैं-

वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शरीरो दोषसंग्रहः।

सुश्रुत संहिता में वात-पित्त-कफ को देह की उत्पत्ति का कारण कहा गया है-

1. चरक सूत्र, 30/27

"शरीरस्थ प्राकृत एवं अप्राकृत वायु का; लोक में प्राकृत अप्राकृत वायु का गुण-कर्म तथा वायु के विभु स्वरूप का वर्णन किया गया है। चारों महर्षियों ने एक-दूसरे के विचारों का समर्थन करते हुए शरीरस्थ वायु के गुणों तथा उनके प्रकुपित होने तथा प्रशमन कारक विपरीत गुणों की व्याख्या की है। महर्षिगणों के विचारों का समर्थन करते हुए राजर्षि वार्योविद ने लोक में प्राकृत वायु के कार्यों तथा अप्राकृत वायु के कार्यों का विवरण तथा समाधान प्रस्तुत किया है।"

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसम्भवहेतवः।[2]

इन दोनों संहिताओं में वायु के गुण, कर्म, प्रकृति (स्वभाव), विकृति (विकार) अवस्था का निर्देश मिलता है। जो शरीर की स्वस्थावस्था तथा विकारावस्था हेतु अनुकरणीय ज्ञान है।

यहाँ पर यह विशेष उल्लेखनीय है कि चरक संहिता सूत्रस्थान 12वें अध्याय में वायु के संदर्भ में राजर्षि वार्योविद (वायु के विज्ञाता) एवं महर्षि साङ्कृत्यायन कुश, कुमारशिरा भारद्वाज, काङ्कायन एवं बडिश के मध्य संभाषा परिषद हुई, जिसका विवरण 'वातकलाकलीय अध्याय' में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस में वात यानी वायु के सूक्ष्मतत्त्व का विवेचन हुआ है। वातकलाकलीय शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जाती है- **वातस्य कलाया अपि कला कलाकला तदधिकृत्य विवेचनं कलाकलीयम्।**

अर्थात् वायु के गुण-दोष की कला यानी सूक्ष्म भाग की भी कला यानी सूक्ष्मभाग का विवेचन जिस अध्याय में किया गया हो, वह वातकलाकलीय कहलाता है।

उक्त अध्याय में शरीरस्थ प्राकृत एवं अप्राकृत वायु का; लोक में प्राकृत अप्राकृत वायु का गुण-कर्म तथा वायु के विभु स्वरूप का वर्णन किया गया है। चारों महर्षियों ने एक-दूसरे के विचारों का समर्थन करते हुए शरीरस्थ वायु के गुणों तथा उनके प्रकुपित होने तथा प्रशमन कारक विपरीत गुणों की व्याख्या की है। महर्षिगणों के विचारों का समर्थन करते हुए राजर्षि वार्योविद ने लोक में प्राकृत वायु के कार्यों तथा अप्राकृत वायु के कार्यों का विवरण तथा समाधान प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार से है-

प्रकृतिभूतस्य खल्वस्य लोके चरतः कर्माणीमानि भवन्ति; तद्यथा- धरणी धारणं, ज्वलनोज्ज्वालनम्, आदित्य-चन्द्र-नक्षत्र-ग्रहगणानां सन्तानगतिविधानं सृष्टिश्च मेघानाम्, ऋतूनां प्रविभागः, विभागो धातूनां, धातुमानसंस्थानव्यक्तिः बीजाभिसंस्कारः शस्याभिवर्धनमविक्लेदोपशोषणे अवैकारिकविकार-श्चेति।[3]

अर्थात् निश्चित ही इस लोक (संसार) में चलनेवाली प्रकृतिभूत (स्वस्थ) वायु के ये कर्म होते हैं- जैसे कि धरणी (पृथ्वी) का धारण करना, अग्नि का जलना, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रहों के समूह का सतत (निरन्तर) स्वगति में रखना, बादलों की संरचना करना, जल का बरसना, नदी का बहना, पुष्पों तथा फलों को पैदा करना, पृथ्वी को फोड़कर वृक्ष आदि का निकलवाना, ऋतुओं का पृथक् विभाग करना, धातुओं (स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह आदि) को विभाजित करना, धातुओं की मात्रा, आकृति की अभिव्यक्ति, बीजों में गुणों का आधान करना, धान्यों को बढ़ाना, आर्द्रभाव को समाप्त कर उपशोषण द्वारा सुखा देना (पकाना)। वह

2. सुश्रुत संहिता, 21/3

3. चरक संहिता, 12/18.

अवैकारिक है, जिससे संसार में कोई विकृति न हो उसके विकार (कार्य) से संसार में कारणत्व का कथन करते हैं।

आगे, लोक में चलनेवाली विकृत वायु के कर्म ये होते हैं-

प्रकुपितस्य खल्वस्य लोकेषु चरतः कर्माणीमानि भवन्ति; तद्यथा- शिखरिशिखरावमथनम्, उन्मथन-मनोकहानाम्, उत्पीडनं सागराणाम्, उद्वर्तनं सरसां, प्रतिसरणमापगानाम्, आकम्पनं च भूमेः, आधमनमम्बुदानां, नीहारनिर्ह्रादपांशुसिकतामत्स्य-भेकोरगक्षाररुधिराश्माशनिविसर्गः, व्यापादनं च षण्णामृतूनां, शस्यानामसङ्घातः, भूतानां चोपसर्गः, भावानां चाभावकरणं, चतुर्युगान्तकराणां मेघ-सूर्यानलानिलानां विसर्गः।[4]

जैसे- पर्वत के शिखरों में तोड़-फोड़ करना, वृक्षों का उन्मूलन (समूल उखाड़ना), समुद्रों का उत्पीडन, तालाबों के जलों को ऊपर की ओर उछालना, नदियों को विपरीत दिशा में बहाना, और भूकम्प करना, मेघों को एकत्रीभूत करना, बर्फ (हिम), बिना मेघ के गरजना, धूल, बालू, मछली, मेढक, सर्प, क्षार, पत्थर अशनि (वज्र) का विसर्जन करना (उत्पन्न करना तथा वातावरण में उन्हें व्याप्त करना, षड् ऋतुओं का हीन, मिथ्या, और अतियोग करना, धान को पूर्णतः परिपक्व

न होने देना, प्राणियों (भूतों) का महामारी संक्रामक रोग से विनाश करना, भावस्वरूप पदार्थों का विनाश (समाप्त) करना, बादल, सूर्य, सूर्य, अग्नि और वायु को उत्पन्न कर चारों युगों को अन्त करना।

वायु के प्राकृत एवं अप्राकृत गुण-कर्म को विचार में रखते हुए उसके विभु स्वरूप को निम्न प्रकार से उल्लेखित किया गया है-

स हि भगवश्चन् प्रभवश्चाव्ययश्च, भूतानां भावाभावकरः सुखासुखयोर्विधाता, मृत्युः, यमः, नियन्ता, प्रजापतिः, अदितिः, विश्वकर्मा, विश्वरूपः, सवर्गः, सर्वतन्त्राणां विधाता, भावानामणुः, विभुः, विष्णुः, क्रान्ता लोकानां, वायुरेव भगवानिति ॥[5]

अर्थात् निश्चय ही वह (वायु) भगवान संसार की उत्पत्ति का कारण और अव्यय (अविनाशी) है, प्राणियों (चर एवं अचर) का उत्पत्ति तथा विनाशक है, आरोग्य (सुख) रोग (दुःख) का कर्ता है, मृत्यु, यम, नियन्ता, प्रजापति, अदिति, विश्वकर्मा, विश्वरूप, सवर्ग, सभी तन्त्रों का रचयिता, भावों का अणु (सूक्ष्म), व्यापक

4. चरकसूत्र, 12/8

5. चरक संहिता, 12/8

विष्णु, लोकों का- अतिक्रमण करनेवाला (क्रान्ता) वायु ही भगवान् है।

उपर्युक्त संदर्भों से स्पष्ट होता है कि वायु के तीन स्वरूप हैं यथा– शरीरस्थ, प्राकृत एवं अप्राकृत वायु, लोकस्थ प्राकृत एवं अप्राकृत वायु तथा विश्वरूप (विभु), शरीरस्थ वायु अपने षड् गुणों - रुक्ष, लघु, शीत, दारुण, खर, विशद समान द्रव्यों के अभ्यास से प्राकृत (स्वस्थ) वायु को प्रकुपित (विकार) का कारण होते हैं, जो धातु की वृद्धि कारक हैं। इसके अतिरिक्त अपने प्रभाव यथा- रुक्षता आदि करनेवाले, रात्रि जागरण, दौड़ने का अभ्यास से भी प्रकुपित होता है। इसके विपरीत वायु के प्रशामक गुणों यथा- स्निग्ध, गुरु, उष्ण, श्लक्ष्ण, मृदु, पिच्छिल युक्त आहार द्रव्यों के सतत अभ्यास (सेवन) से प्रकुपित वायु प्रशान्ति को प्राप्त हो स्वस्थावस्था (प्राकृत अवस्था) प्रदान करते हैं।

लोक (संसार) में प्राकृत तथा अप्राकृत वायु के कर्मों को पूर्व में उल्लेख कर दिया गया है तथापि विकृत वायु के कारण होनेवाले कर्मों को जो अति रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं तथा दूरदर्शन आदि के माध्यम से प्रसारित किये जा रहे हैं जिसके कारण लोक जीवन भयाक्रान्त हो गया है। प्रमुख उदाहरण इस प्रकार से हैं- महामारी संक्रामक विगत 2019 से कोविड-19 तथा विभिन्न संक्रमणशील उसके विषाणु जिसके कारण मृत्यु से भयग्रस्त वातावरण हो गया है। समुद्री भागों में चक्रवात, सागर के जल को उछाल प्रदान करना जिससे उस भू-भाग जन-धन की हानि, पर्वतीय क्षेत्रों में पर्वत-शिखरों को तोड-फोड कर भूस्खलन तथा नदियों के जल मे तीव्र गति व्याप्त करना, अनेकानेक स्थलों पर भूकम्प पैदा होना, बर्फीले तूफान हिमपाताधिक्य तथा बिजली के साथ वज्र का गिराना। इसप्रकार, वायु जहाँ सृष्टि कारक है वहीं विनाशक रूप भी है।

इसके सामर्थ्य को देखते हुए वायु को निम्नलिखित संज्ञा प्रदान की हैं- विभु, विश्वकर्मा, प्रजापति समीरण, नेता, धरणीधर, अनिल, महीधर, विष्णु तथा भगवान्।

श्रीविष्णुसहस्त्रनाम स्तोत्रम् में उपरोक्त नामों का वर्णन मिलता हैं जिसकी व्याख्या श्रीमदाद्यशंकराचार्य कृत भाष्य में इस रूप में की है-

विभुः- हिरण्यगर्भादि रूपेण विविधं भवतीति विभुः

विश्वकर्मा- विश्वं कर्म क्रिया यस्य स विश्वकर्मा

समीरणः- श्वसनरूपेण भूतानि चेष्टयतीति समीरणः

नेता - जगद्यन्त्रनिर्वाहको नेता।

धरणीधरः - शेषदिग्गजरूपेण वराहरूपेण च धरणीधरः इति

अनिलः- अनादित्वात् अनिलः

महीधरः- मही पूजा धरणीं वा धारयतीति
विष्णुः- वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः
प्रजापतिः - प्रजानां पतिः पिता
भगवान्- उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति।

नारायण उपनिषद् (3. 68) में ॐ तद्वायुः' अर्थात् ॐ ही वायु है माना गया है।

उपर्युक्त सन्दर्भों से यह स्पष्ट है कि वायु का अव्यक्त, सूक्ष्म तथा व्यक्त स्वरूप प्राकृत एवं अप्राकृत कर्मों का निधारण कर सृष्टि संचालन में व्यापकत्व प्रभाव डालता है, जो इसके विभु स्वरूप को इंगित करता है। यह ज्ञान-विज्ञान प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आप्त जनोपदेश द्वारा सिद्ध होता है।

***

आधार ग्रन्थ-

1. अग्निवेश, चरक एवं दृढ़बल (1992) चरक संहिता, श्रीचक्रपाणिदत्त विरचित आयुर्वेददीपिका संस्कृत व्याख्या, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,
2. सुश्रुत (1982), सुश्रुत संहिता- श्री डल्हणकृत निबन्धसंग्रह संस्कृत व्याख्या, चौखम्भा आरियण्टालिया वाराणसी और दिल्ली।
3. श्रीविष्णुसहस्त्रनाम, श्रीमदाद्यशंकराचार्यकृत भाष्य और हिन्दी अनुवाद सहित (1990) गीताप्रेस, गोरखपुर-273005
4. नारायण उपनिषद् : वैष्णव उपनिषदः, (1923) अ. महादेवशास्त्री (सम्पादक), अड्यार पुस्तकालय, पृ. 167-173. चेन्नई।
5. चरक संहिता, प्रथम खण्ड (2011), मूल का सौन्वय हिन्दी अनुवाद एवं श्रीचक्रपाणिदत्तविरचित 'आयुर्वेद दीपिका' का 'एषणा' हिन्दी अनुवाद राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ, नई दिल्ली।

***

प्राणवायु और उसका प्रभाव

श्री अंकुर पंकजकुमार जोषी
ध्यानीधाम आश्रम, निकोरा, भरूच, गुजरात

हम दैनिक जीवन में नाक के दोनों नथुनों से हमेशा वायु ग्रहण करते हैं तथा छोड़ते हैं। यह वायु हमारे फेफड़े में जाती है औऱ ऑक्सीजन फेफड़ों में एल्वियोली नामक छोटी नलिकायों से गुजरती है। एल्वियोली ऑक्सीजन के अणुओं को रक्तप्रवाह में जाने देती है। फिर ऑक्सीजन अणु शरीर में सभी कोशिकाओं तक वितरित किया जाता है। यह मनुष्य के जीवन का आधार है। योग में इस प्रक्रिया को प्राणायाम के द्वारा नियंत्रित किया जाता है तथा इस कार्य की गति को बढ़ाकर सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इस विषय पर हमारे पूर्वाचार्य बहुत कुछ कार्य कर चुके हैं और प्राणायाम की विधि से दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन पा चुके हैं। इसकी शास्त्रीय विधि को आज समझने की महती आवश्यकता है। तब हम शायद भविष्य में इसकेलिए भी तैयार हो सकें कि जहाँ हमें स्वच्छ वायु मिले वहाँ अधिक श्वसन लेकर प्रदूषित वायु में कम से कम श्वसन लेकर शरीर की आवश्यकता को पूरी कर सकें। आज जिस प्रकार से प्रदूषण बढ़ता जा रहा है, उसमें हमारे लिए प्राणायाम की साधना परम आवश्यक है।

श्री गुरुभ्यो नमः श्री गणेशाय नमः

पञ्चमहाभूत की उत्पत्ति में वायुतत्त्व का स्थान दूसरा है। शब्द और स्पर्श ये दो गुण इस तत्त्व के कहे गए है। सनातन संस्कृति में प्रत्येक तत्त्व के तीन स्वरूपों का निश्चय है— आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक। स्पर्श के मुख्य गुण से युक्त पंचीकृत वायु जहाँ आधिभौतिक है, उसके अधिष्ठाता देव— वायुदेव- जिनका विशेष स्वरूप शास्त्रों में उल्लिखित है, वह वायु का ही आधिदैविक स्वरूप है। वही, सूक्ष्मशरीर में स्थित पञ्चप्राण वायु का आध्यात्मिक स्वरूप है। यही पञ्चप्राण कार्यरूप में स्थूल शरीर में कार्यान्वित होते है और कारणरूप से सूक्ष्मदेह की प्राणवहा नाड़ीयों में प्रवाहित होते है। आदि शंकराचार्यजी प्राण को सूक्ष्म शरीरका अङ्ग बताते हुये 'विवेकचूडामणि' में प्रतिपादित करते है -

वागादिपञ्च श्रवणादिपञ्च
प्राणादिपञ्चाभ्रमुखानि पञ्च।
बुद्ध्याद्यविद्यापि च कामकर्मणी
पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः ॥18॥

वागादि पाँच कर्मेंद्रियाँ, श्रवणादि पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, प्राणादि पाँच प्राण, आकाशदि पाँच भूत, बुद्धि आदि अन्तःकरण चतुष्टय, अविद्या तथा काम और कर्म इसे पुर्यष्टक अथवा सूक्ष्म शरीर कहते हैं।

यह प्राणवायु मुख्यरूप से पाँच प्रकार का कहा गया है— प्राण, अपान, सामान, उदान और व्यान। प्राण वायु का स्थान हृदय, अपान वायु का स्थान गुदा, समान वायु का स्थान नाभि, उदान वायु का

स्थान कंठ एवं व्यान वायु को सर्वशरीर में व्याप्त कहा गया है। इन्ही पञ्चप्राणों के उपप्राण— नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय कहे गए है, जिनका कार्य अनुक्रम से डकार लेना, पलक झपकाना, छींकना, जम्भाई लेना एवं मृत्यु के बाद देह का फूलाना है।

सूक्ष्म शरीर की प्राणवहा (प्राण वहन करनेवाली) नाड़ियाँ 72000 कही गयी हैं, जिनके मुख्य तीन नाड़ियों का आध्यात्मिक महत्त्व है— ईडा, पिंगला तथा सुषुम्णा। ईडा देह की बाँये भाग में तथा पिंगला देह के दाँये भाग में स्थित है। सुषुम्णा नाड़ी का स्थान मध्य में माना गया है। 72000 में से केवल इसीकी गति ब्रह्मरन्ध्र पर्यंत है। ईडा एवं पिंगला नाड़ी की गति भ्रूमध्य-पर्यंत कही गयी है। ईडा नाड़ी के देवता चन्द्र एवं पिंगला नाड़ी के देवता सूर्य है। सुषुम्णा नाड़ी के देव अग्नि है। ध्यातव्य है कि अग्नि ही सूर्य और चन्द्र के मूल में है— अर्थात् सुषुम्णा नाड़ी ही सारे नाड़ी तंत्र का मूल है।

शरीर में श्वास जब बाँये नथुने से मुख्यरूप से चलती है, तब चन्द्ररूप ईडा नाड़ी की जागृति होती है। दाँये नथुने से मुख्य रूप से श्वास चलने पर सूर्यरूप पिंगला नाड़ी की जागृति होती है। दोनों नथुने से समान रूप से चलने पर सुषुम्णा नाड़ी का जागरण माना गया

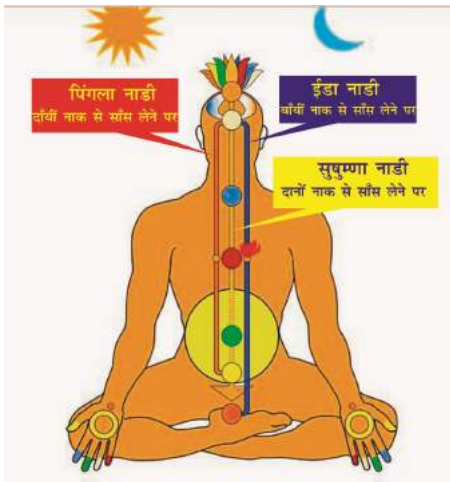

"शरीर में श्वास जब बाँये नथुने से मुख्यरूप से चलती है, तब चन्द्ररूप इडा नाड़ी की जागृति होती है। दाँये नथुने से मुख्यरूप से श्वास चलने पर सूर्यरूप पिंगला नाड़ी की जागृति होती है। दोनों नथुने से समान रूप से चलने पर सुषुम्णा नाड़ी का जागरण माना गया है। इन्हें चन्द्र एवं सूर्य स्वर भी कहते है।"

है। इन्हें चन्द्र एवं सूर्य स्वर भी कहते है।

भगवान् शिवजी ने 'शिवस्वरोदय' नामक ग्रन्थ में किस स्वर का समष्टि एवं व्यष्टि पर क्या प्रभाव है, उसका विस्तृत विवेचन किया है। वहीं, किस स्वर की जागृति होने पर कौन-सा कार्य करने पर कार्य-सिद्धि होती है इत्यादि अनेक रहस्यमय विधान इस स्वरोदय साधना के माध्यम से जान जाता है। स्वरोदय ज्योतिष भी अपने आपमें एक बहुत बड़ा विज्ञान है, जो प्राणवायु के अपार सामर्थ्य का परिचय देता है। यह विषय स्वरोदय साधना के परम्परागत निष्णात श्रीगुरुदेव से जानना चाहिए, यह पढ़कर करने का विषय ही नहीं है।

प्राणवायु का सुषुम्णा में प्रवेश ही समस्त योग एवं तंत्र साधना का उद्देश्य है। प्रकारांतर से इसे ही कुण्डलिनी शक्ति का जागरण कहा है। कुण्डलिनी शक्ति का ब्रह्मरंध्र में प्रवेश समस्त आध्यात्मिक यात्राओं का अन्तिम पड़ाव है— अखंड परमात्मानुभूति में समस्त साधनों की परिणति हो जाती है।

षट्चक्र की दृष्टि से, अनाहत चक्र वायु तत्त्व का स्थान है। जैसे की आगे कहा गया, प्राणवायु का मुख्य स्थान भी यही है। चन्द्र का स्थान कंठ एवं उससे से ऊपर माना है। अग्नि का स्थान नाभि एवं उसे नीचे —वायुतत्त्व मध्य में रहते हुए इनका संतुलन

रखता है। इसी को प्रकारांतर से कहें, तो शरीर की उर्जा में शैत्य एवं उष्णता के प्रभाव को वायु तत्त्व की साधना से संतुलित किया जाता है। इसकेलिए प्राणवहा नाड़ियों का शुद्ध होना अनिवार्य है। इन प्राणवहा नाड़ियों के शुद्ध होने के बाद प्राण पर, एवं उसके फलस्वरूप चन्द्र एवं सूर्य रूप शक्तियों पर अधिकार प्राप्त होता है— इन दोनों शक्तियों पर ठीक ठीक अधिकार प्राप्त होने पर इहलौकिक और पारलौकिक दोनों जगत् में कुछ भी, कुछ भी अलभ्य नहीं रहता। क्योंकि सारा ही विश्व अग्निसोमात्मक कहा गया है।-

अग्नीषोमात्मकं जगत्॥ (रुद्रहृदयोपनिषत्)

वायु अर्थात् प्राणवायु के इस महत्त्व का अनुभव करनेवाले महर्षियों ने इसी लिए प्राणायाम को प्रत्येक नित्य नैमित्तिक कर्म का एक अभिन्न अंग ही बना दिया है।

वायु को वश में करनेवाले केलिए एक विशेष बात यह है,कि यह अभ्यास श्रीगुरु के मार्गदर्शन में ही होना चाहिए— गुरु भी ऐसे जिन्होंने अपने प्राण को वश में कर लिया हो!

मरुज्जयो यस्य सिद्धस्तं सेवेत गुरुं सदा।
गुरुवक्त्रप्रसादेन कुर्यात् प्राणजयं बुधः॥

जिन्हें प्राणजय हुआ हो, ऐसे गुरु का सेवन करना चाहिए, श्रीगुरु की कृपा से ही बुद्धिमान् पुरुष को अभ्यास से प्राणजय हो जाता है!

***

वायु-वंदना

डॉ. मुरलीधर चांदनीवाला, रतलाम।

(ऋग्वेद : सप्तम मंडल : सूक्त-92, ऋषि : वसिष्ठः)

आ वायो भूष शुचिपा उप नः
सहस्रं ते नियुतो विश्ववार।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि
यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम्॥ (7:92:1:)

हे पवित्र वायु!
आओ हमारे यहाँ।
तुम हम सबके वरेण्य हो,
सहस्रों प्राणी तुम्हारे आज्ञानुवर्ती।
सब भोग तुम्हारे हैं, हे देव!
ये मैं तुम्हें अर्पण करता हूँ॥1॥

हे वायु! इन्द्र को ले आओ,
हमारा जीवन वीरता से भर दो।
अपनी मधुरता दो, अपना देवत्व दो,
ऐश्वर्य और उपभोग दो हमें॥2॥

आओ अश्व पर आरूढ़ होकर,
आओ वायु! जीवन-उपहार लेकर।
भोग और ऐश्वर्य लेकर आओ,
गो धन, वाजि धन लेकर आओ॥3॥

हमसे सब शत्रु पराजित हों,
हे वायु! हममें दिव्यता संचरित हो।
पथ की सब बाधाएँ हट जाएँ,
युद्ध करते हुए हम विजयी हों॥4॥

सौ-सौ, सहस्रों ऊर्जाएं लेकर
आओ हमारे जीवन-यज्ञ में,
हे वायु! हमारा जीवन सुखमय हो।
अपने स्वस्ति-साधनों से हमारी रक्षा करो॥5॥

***

परमात्मा की प्राणशक्ति को प्रणाम

डा. मयंक मुरारी

वरीय उप महाप्रबंधक, उषा मार्टिन कंपनी। विगत 25 सालों में 400 से अधिक आलेख और 12 पुस्तकें प्रकाशित।

पता : तेलपा निवास, नजदीक एच/116 ए0 जी0 क्वार्टर के पास, हिनू कॉलोनी, पोस्ट- डोरंडा, रांची, झारखंड- 834002

यह सृष्टि कैसे प्रकट हुई और कैसे यह टिकी हुई है, यह प्रश्न भारतीय परम्परा में सनातन है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त की छठी ऋचा में यही प्रश्न आया है कि 'कौन इस बात को वास्तविक रूप से जानता है और कौन इस लोक में सृष्टि के उत्पन्न होने के विवरण को बता सकता है?' केवल भारत में ही नहीं, सभी देशों की सभ्यताओं के दर्शनों में यह प्रश्न घूमता रहा है। आधुनिक वैज्ञानिक भी 'गॉड पार्टिकल' की खोज इसीका उत्तर देने केलिए कर रहे हैं। इस प्रश्न के उत्तर में वायु किस प्रकार से सृष्टि-निर्माण का कारक तत्त्व है, इस पर वैज्ञानिकों ने बहुत काम किया है। यहाँ लेखक ने भारतीय प्राचीन परम्परा तथा विदेशी वैज्ञानिकों के द्वारा किए गये कार्यों को एक मंच पर स्थापित किया है।

परमात्मा से निकलेवाली किसी भी वस्तु में परमात्मा के मूलभूत गुण होते हैं। प्राण रूप में क्रियाशील शक्ति वह परमतत्त्व है, जो जड़-चेतन, ससीम और असीम में अव्यक्त रूप से वास करती है। यह प्राणवायु ही सजीव के जीवन और निर्जीव के परिवर्तन का आधार है। परमात्मा की प्राणशक्ति ही प्रज्ञावान स्पंदन के रूप में विश्व की रचना तथा मार्गदर्शन करती है। अस्तित्व की हरेक वस्तु में जो स्पंदन है, वह उस प्राणवायु के कारण है, जो परमात्मा से निःसृत है। ब्रह्मांडीय लय में संतुलन और उसमें प्रज्ञावान स्पंदन इस समूचे अस्तित्व को प्रकट करता है। सूर्य के तेज, तारों की चमक और पृथ्वी की गुरुत्व का कारण परमतत्त्व की प्राणशक्ति है। उसी प्रकार हमारे विचारों, हमारे शरीर की कोशिकाओं को बाँधे रखनेवाले तत्त्व का नाम प्राणवायु है। यह परमात्मा की क्रियाशील प्राणवायु ही प्रकृति, और पुरुष तथा उसके बीच जीवन का मुख्य आधार है। उसके बिना जीव और समस्त जगत् का संतुलन खत्म होने लगता है।

परमब्रह्म रूपी परमात्मा ने इस स्पंदनशील जगत् को पहली बार रचा, तो अभिव्यक्ति का पहला स्पंदन (प्राणवायु) था। यह विचार का स्पंदन था। फिर इस प्राणशक्ति से ऊर्जा के विविध स्वरूप प्रकट हुए। प्रकाश, ध्वनि, ताप, तरलता उसी प्राणशक्ति की अभिव्यक्ति थी, तो द्रव्यमान रूप में वह प्राण ही अस्तित्व में गोचर प्रकृति, व्यक्त जगत् और पंचभूत रूपी जीवों में खुद को प्रकट किया।

पश्चिमी वैज्ञानिक **कार्ल सागन** ने 'कास्मोस' में

लिखा है कि दस से बीस अरब साल पूर्व 'बिग बैंग' यानी महाविस्फोट से इस सृष्टि की शुरूआत हुई। इस समय विश्व की जितनी ऊर्जा है, जितना भूत है, वह चरम घनत्व की दशा में एक गणितीय बिंदू पर केंद्रित था। यानी समूचे विश्व की सारी ऊर्जा, सारा पदार्थ, सूर्य, तारे और निहीरिका सहित पूरा ब्रह्मांड एक बिंदु के भीतर घनीभूत था। (पृष्ठ- 200-01)।

इस बात को भारतीय ऋषियों ने कहा- जो पिंड में है, वही ब्रह्मांड में है। वह पिंड कैसा था, जिसमें समस्त चीजें घनीभूत थी। **कार्ल सागन** कहते हैं कि उस विराट् बिंदु की न लंबाई, न चौड़ाई, न ऊँचाई और न ही परिधि या केंद्र है। वह एक 'कॉस्मिक एग' है, जिसे भारतीय परंपरा ब्रह्मांड यानी ब्रह्म का अंड कहा है। वह एक ब्रह्म बहु हो गया, लेकिन परमपुरुष का अंश 'मन, प्राण और भूत' रूप में अस्तित्व के सारे तत्त्व के साथ रहता है। अब ये बहु सदैव 'वह' यानी परम पुरुष को प्राप्त करना चाहता है। इसे प्राप्त करने का तरीका है, 'कॉस्मिक एग' यानी हिरण्यगर्भ या ब्रह्म से एकात्म हो जाए।

परमात्मा अपनी सृजनकर्म रूप में स्पंदनशील प्राण है। यह प्राण स्वयं ही परमब्रह्म है, अव्यक्त है और परिपूर्ण है। जिस प्रकार ब्रह्मांडीय स्पंदन जगत की रचना करता है, उसी प्रकार स्पंदनशील प्राण इस भौतिक शरीर का रचना करता है। एक को परमात्मा तो दूसरे को आत्मा कहते हैं। लेकिन दोनों में स्पंदनशील प्राणवायु समान कारक है, जो सभी प्रकार के व्यक्त स्वरूपों केलिए क्रियाशील होता है। यदि हम अपनी चेतना का विस्तार कर लें तो ब्रह्मांडीय स्पंदन को सुन सकते है, जो परमतत्त्व से निःसृत हो रहा है।

प्राणशक्ति शरीर के सभी संवेदक तथा संवाहक नाड़ियों एवं कोशिकाओं में विद्यमान होती है। इसे महसूस किया जा सकता है। यह स्पंदन सभी भौतिक पदार्थ में होता है। सारी सृष्टि परमात्मा की प्राणवायु से स्पंदित हो रहा है। सभी स्पंदन की एक ध्वनि है।

"कार्ल सागन कहते हैं कि उस विराट् बिंदु की न लंबाई, न चौड़ाई, न ऊँचाई और न ही परिधि या केंद्र है। वह एक 'कॉस्मिक एग' है, जिसे भारतीय परंपरा ब्रह्मांड यानी ब्रह्म का अंड कहा है।"

ब्रह्मांडीय स्पंदन न केवल हमारे इंद्रियों से सुननेवाली ध्वनि को उत्पन्न करता है, बल्कि इन ध्वनि और तत्त्व में अन्तर्निहित ध्वनि को भी उद्भासित करता है, जिसे केवल अन्तर्ज्ञान द्वारा ही सुना जा सकता है। जब व्यक्ति की चेतना सभी भौतिक ध्वनियों और सूक्ष्म ध्वनियों से अपने को अलग कर लेता है, तो वह ब्रह्मांडीय ध्वनि सुनाई पड़ती है।

सूर्य ही प्राण, ब्रह्म है वायु

प्राण से जीवन है, प्राण से प्राणी है। प्राण दिखाई नहीं देता है परंतु उसका अस्तित्व है। ऋग्वेद (7.87.2) में कहा गया है कि यह प्राण मूलतः वायु है। हमारी आत्मा वायु है। प्राण का जन्म इस आत्मा से होता है। जन्म लेने के कारण प्राण का अस्तित्व है। शरीर प्राण के आधार पर ही प्रतिष्ठित होता है। इस प्राण का अर्थ है वह ऊर्जा जो सृष्टि को एकजुट करती है। इसका मतलब श्वास भी है जो हमारे जीवन में प्रतिपल सक्रिय है प्राण हमारे जीवन में प्रतिपल स्पंदित है।

इस जटिल प्राण का रहस्य जानना भारतीय ऋषियों से लेकर विदेशी चिंतकों का मुख्य विषय रहा है। चीन के दार्शनिक लाओ त्सु ने अपनी किताब 'ताओ तेहचिंग' में प्रकृति के अंदर एक अन्तर्निहित व्यवस्था की अनुभूति की। उन्होंने इस व्यवस्था को 'ताओ' नाम दिया। ऋग्वेद में प्रकृति की सारी गतिविधियों के नियमन करनेवाले तत्त्व को 'ऋत' कहा है। इस क्रियाशील सृष्टि व्यवस्था के नियम को

कई नामों से परिभाषित किया गया है। योग में इसे चैतन्य, दर्शन में ब्रह्म, दैनिक व्यवहार में ईश्वर, ज्योतिष में काल, आयुर्वेद में प्राण, संगीत में नाद, साहित्य में रस और गणित में अनंत कहा गया है। दर्शन और व्यवहार में ये सारे शब्दों में सूक्ष्म भेद होने के बावजूद उस मूल परमतत्त्व के विविध कलाओं को उदभाषित करते हैं।

भारतीय मन ने सदैव ही हरेक क्रिया में एक दिव्यता और भव्यता का दर्शन किया है, जो देश काल से परे शिखर पर विराट् और शाश्वत से जुड़ जाते हैं। पश्चिम की वैज्ञानिक **लिन मैकटैगार्ट** ने भी अपनी पुस्तक 'द फील्ड' में ब्रह्मांड के रहस्यमय बल के बारे में लिखा है। इसमें बताया है कि हमारे सबसे बुनियादी स्तर पर हम एक रासायनिक प्रतिक्रिया नहीं हैं, बल्कि एक ऊर्जावान् आवेश हैं। मनुष्य और सभी जीवित चीजें, ब्रह्मांड में बाकी सब चीजों से जुड़े ऊर्जा क्षेत्र में ऊर्जा का एक संघ हैं। यह स्पंदित ऊर्जा क्षेत्र हमारे अस्तित्व और हमारी चेतना का केंद्रीय इंजन है, हमारे अस्तित्व का अल्फा और ओमेगा है। वैज्ञानिकों का कहना है कि परमाणु अदृश्य ऊर्जा से बने होते हैं, मूर्त पदार्थ से नहीं। ब्रह्मांड एक अविभाज्य संपूर्ण गतिशील है जिसमें ऊर्जा और पदार्थ इतने निकट से जुड़े हुए हैं कि उन्हें अलग-अलग संस्थाओं के रूप में मानना असंभव है।

ऋग्वेद में कहा गया है कि वायु आदि तत्त्व तथा जल की सखा है, ऋतावा है, प्रथमा है- **अपां सखा प्रथमजा ऋतावा।** यहाँ वायु को देवों की आत्मा बताया गया है। तैत्तिरीय-उपनिषद् के आरम्भ में ही वायु के संबंध में कहा गया है कि-

नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वमेव प्रत्यक्षम् ब्रह्म वदिष्यामि।

छांदोग्य उपनिषद में गाड़ीवान रैक्व और राजा जानश्रुति की कथा में काफी रोचक वर्णन है। गाड़ीवान रैक्व बताता है कि अग्नि बुझती है, वह वायु में चली जाती है। सूर्य अस्त होकर वायु में जाता है। अन्त में सब वायु में ही जाते है। वायु सबकी अन्तिम परिणति है। वायु को देवों का प्राण और आत्मा बताया गया है। वायु दिखाई नहीं पड़ता है। सृष्टि विकास के संबंध में बताया गया है कि सूक्ष्मतम तत्त्व आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी तत्त्व का विकास और विस्तार हुआ।

वायु का अपना गुण स्पर्श है। चूँकि उसका विकास आकाश से हुआ है, अतएव उसे आकाश से शब्द गुण मिला है। वायु घोष करते हैं। इसके बाद अग्नि का अपना गुण ताप है और उसे वायु से स्पर्श और आकाश से शब्द गुण मिलते है। जल का अपना गुण रस है। आकाश, वायु और अग्नि से उसे शब्द, स्पर्श और ताप गुण मिलता है। इसी प्रकार पृथ्वी में चार गुण के अलावा अपना एक गंध गुण होता है। इसी प्रकार सृष्टि विकास का चरण होता है। ठीक इस तरह से उल्टी दिशा में सृष्टि का विसर्जन होता है। पृथ्वी तत्त्व जल में, फिर जल तत्त्व अग्नि में और अग्नि तत्त्व वायु में मिल जाती है। वायु तत्त्व अन्त में आकाश में मिलकर मूल तत्त्व ब्रह्म प्राण रूप में वायुहीन होकर स्पंदित रहता है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त (10.129.2) में इस दशा के बारे में कहा गया है-

आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥2॥

तैत्तिरीयोपनिषद के दो और तीन श्लोक में कहा गया है कि प्राण शक्ति ही सब भूतों का जीवन है। इसी कारण से जीव का विश्व तत्त्व कहा जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्राण नष्ट नहीं होता है, वह शाश्वत होता है और भौतिक विश्व के सभी रूपों के सृजन में सहभागी बनता है।

महर्षि अरविंद अपने पुस्तक 'दिव्य जीवन' में कहते है कि यदि कोई उच्चतर शक्ति उसे रोककर नहीं

रखे तो वह प्राण अनिवार्य रूप से सृजन करता चला जायेगा। आगे वह कहते है कि विश्व में एक सतत क्रियाशील ऊर्जा गतिशील है जो कम या ज्यादा, सूक्ष्म या स्थूल अलग अलग जड़ रूप धारण करती है। हर जड़ शरीर, या पदार्थ में, वनस्पति, पशु या धातु में वही सतत क्रियाशील शक्ति संचित और क्रियाशील रहती है। यही वह क्रिया है जो अपने आपको इस तरह अर्जित करती है कि वही प्राण शक्ति है। वह कहते है कि यह जगत प्राण का क्षेत्र है लेकिन हम उसे मुख्य रूप से तभी पहचान सकते है। जब उसका संगठन इतना पर्याप्त हो कि हम उसके अधिक बाहरी और जटिल गतियों को देख सके। हम वनस्पति के जीवन व्यापार को मानते है लेकिन अभी भी धातु, रसायनिक परमाणु या अन्य जड़ पदार्थ में उस प्राणशक्ति की क्रियाशीलता को नहीं मानते हैं। स्वामी योगानंद परमहंस कहते है कि ब्रह्मांडीय प्राणशक्ति के विकर्षण के नियम से इस सृष्टि का क्रम विकास हुआ, कोशिकाओं के विभाजन और यौन सृष्टि कसे जंतुओं का प्रजनन हुआ। इसी प्रकार ईश्वरीय प्राणशक्ति के कारण निर्जीव वस्तुएं भी निरंतर परिवर्तनशील है। सभी निर्जीव वस्तुओं में जीवन तथा चेतना निरंतर उच्चतर रूपों में विकसित हो रही है।

योगानंदजी कहते है कि मिट्टी से खनिजों में, खनिजों से पेड़ों में, पेड़ों से पशुओं में, पशुओं से उत्कृष्ट प्राणी में और मनुष्य से ईश्वर प्राप्त मनुष्य की यात्रा में परमात्मा की प्राणशक्ति ही क्रियाशील रहती है। इस जगत में जो परिवर्तन होता है, बाढ़, भूकंप, खराब मौसम, रोग, असामयिक ऋतु परिवर्तन उस परमात्मा का क्रम विकास का चरण है जिसमें निर्जीव, जैव भौतिक पदाथ से लेकर जीव और चैतन्य प्राणी तक को परिवर्तन से होकर गुजरना होता है। प्राण यानी ईश्वरीय शक्ति का सतत आकर्षण और विकर्षण के नियम के अधीन गमन चलता ही रहता है।

प्रश्नोपनिषद में प्राणवायु

प्राण की जिज्ञासा पर गंभीर चर्चा को प्रश्नोपनिषद के ऋषियों ने उठाया है। इतिहास में उल्लेख है कि भारत के छह विभिन्न भागों से छह जिज्ञासु और विवेकवान ऋषि कश्मीर स्थित पिप्पलाद के आश्रम में गये। सबने वहाँ अपने सवाल पिप्पलाद के समक्ष रखे। प्राण सर्वस्व है, लेकिन इसे विवेकपूर्ण बुद्धि स्वीकार तब करे, जब उसे संतुष्ट किया जाए। कोशल के आश्वलायन ने ऋषि पिप्पलाद से छह सवाल किये।

(1) प्राण किससे उत्पन्न होता है?
(2) वह मनुष्य शरीर में कैसे प्रवेश करता है?
(3) स्वयं को शरीर के भीतर कैसे विभाजित करता है?
(4) शरीर को किस प्रकार छोड़ता है?
(5) नये शरीर में किस प्रकार प्रवेश करता है?
(6) यह मन और इंद्रियों के आंतरिक जगत को कैसे धारण करता है?

ऋषि पिप्पलाद ने सभी सवालों का तर्कपूर्ण जवाब दिया। यह संवाद कठोपनषिद में वर्णित यम और नचिकेता, बृहदारण्यकोपनिषद में उल्लेखित याज्ञ-वल्क्य और गार्गी संवाद की याद दिलाता है, जहाँ भारतीय मनीषा द्वारा ज्ञान के समागम में जीवन और पराजीवन के सवाल को उठाया जाता है और उसक जवाब भी खोजा जाता है। ऋषि पिप्पलाद भी प्रश्न को शुभ मानते है। उन्होंने बताया कि प्राण की उत्पति आत्मा से होती है। इस आत्मा को परमात्मा भी कहा गया है। यह प्राण आत्मा पर आश्रित है। शरीर में मन और संकल्प से प्राण आता है। वह स्वतंत्र नहीं होता हे, बल्कि संकल्प का अनुसरण करता है। आत्मा ही प्राण को जन्म देती है लेकिन सदैव तटस्थ रहती है। प्राण, कर्म और मन के संकल्प तथा उसके प्रभाव से नये शरीर को धारण करता है। यह शरीर की जीवनशक्ति है। पिप्पलाद से आश्वलायन ने पूछा कि यह प्राण कार्य

कैसे करता है, तो उन्होंने बतया कि यह प्राण भी शरीर के भीतर के पृथक् अणु में विद्यमान प्राण को अलग अलग काम देता है।

पिप्पलाद के दार्शनिक चिंतन में शरीर विज्ञान का गहन अध्ययन है। उनके अनुसार जीवन की मुख्यधारा प्राणवायु है। उसका मुख्य कारण मन का संकल्प है। वामदेव ऋषि अपने एक मन्त्र में कहते है कि मैं ही मनु था, मैं ही कक्षीवान था। प्रश्नोपनिषद (3.10) में बताया गया है कि जीवात्मा जिस संकल्प के साथ जीवन जीता है। उसी संकल्प के साथ मुख्या प्राण में स्थित होता है। प्राण सदैव ही उदान से युक्त होता है जो मन के संकल्प के साथ इंद्रियों को विविध लोक की यात्रा कराता है। प्रश्नोपनिषद के माध्यम से ऋषियों ने मन, इंद्रियों एवं आंतरिक तंत्रों को प्राण किस प्रकार धारण करता है, उसके विविध आयामों को देखना एवं उसके अन्तर्जगत के भावों को दर्शन का विषय बनाया है। ऋषियों का मानना है कि शरीर के अन्तरंग रहस्यों को जाने बिना, आत्मदर्शन की राह नहीं खुलती है। ऋग्वेद में सृष्टि के कार्य को यज्ञ बताया गया है तो उपनिषद् में प्राण के आवागमन को यज्ञ की आहुतियाँ बतायी गयी है। पिप्पलाद कहते है कि श्वास का निकलना और अंदर आना ही यज्ञ है। श्वास यानी प्राण को पूरे शरीर में समभाव से ले जानेवाली प्राणवायु को समान प्राण होता है। अन्त में ऋषि कहते है कि सारा प्रपंच प्राण का है। प्राण अपने सभी पाँचों रूप में शरीर के सोते समय भी जागरण करता है और शरीर के व्यापार को संचालित रखता है। इसलिए भारतीय चिंतन में कहा गया है -

यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे।

प्रश्नोपनिषद में ऋषि भार्गव और पिप्पलाद के बीच संवाद में वरिष्ठता के सवाल का भी जवाब खोजा गया है। भार्गव सवाल करते है कि

1. प्रजा को धारण करनेवाले कितने देवता है?
2. कौन इसे प्रकाशित करता है?
3. इनमें वरिष्ठ कौन है?

पिप्पलाद देवताओं के सवाल पर कहते है कि निश्चय ही आकाश देवता है। इसके अलावा वह वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, वाक्, नेत्र और मन को भी देवता कहा है। आमलोगों की आस्था, देवताओं के सवाल और उनके संबंध पर इतना वैज्ञानिक विश्लेषण कदाचित् इस धरती पर कहीं नहीं किया गया है। पिप्पलाद के जवाब पर ऋषियों एवं विचारकों में मतभेद था। सभी विद्वानों का गोचर प्रपंचों को लेकर अपनी धारणा थी। उस धारणा के अनुसार देववाद की परिकल्पना थी। इस विवाद को पिप्पलाद ने काफी रोचक तरीके से हल किया। उन्होंने बताया कि देवताओं की श्रेष्ठता के सवाल पर प्राण ने भी अपनी वरीयता को सबके समक्ष रखा। जब अन्य देवता इससे नाराज हो गये तो प्राण स्वयं को सिद्ध करने केलिए ऊर्ध्वगामी हो गये। जब शरीर से प्राण जाने लगा, तो देवता भी बाहर जाने लगे।

यहाँ पिप्पलाद कहते है कि प्राण के साथ भागने रुकने की विवशता को देखकर वाणी, आँख, कान आदि देवशक्ति प्राणवायु की स्तुति करने लगे। सभी ने कहा कि प्राणवायु ही वरिष्ठ है। (2. 4)। मनुष्य में प्राणवायु है इसलिए हम प्राणी है। प्राण गये कि सारे देवता और गण चले जाते है। फल और फूल भी जब तक प्राण है, तभी तक सुवास और सौंदर्य को बिखेरते हैं। प्रश्नोपनिषद (2.5) में कहते हे कि यह प्राण ही अग्नि है। यही सूर्य है। यही मेघ है। यही इंद्र और वायु है। पृथ्वी का जो कुछ भी सत और असत है। वह सब प्राण ही है। प्राण स्वयं शरीर नहीं है, लेकिन उसका धारक है।

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म असि

तैत्तिरीय उपनिषद में वैदिक देवता को प्रणाम किया गया है। इसके बाद वायु को प्रणाम किया है।

कहा गया है कि वायु को प्रणाम करता हूँ। फिर उसे इंगित कर कहा गया है- आप प्रत्यक्ष ब्रह्म है- **त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म असि।**

अन्न के बाद बाद शरीर में प्राणमय कोष है। इस उपनिषद में ऋषि भृगु और उनके पिता वरुण के बीच संवाद है। वे अपने पिता से प्रार्थना करते है कि- "मुझे ब्रह्म के बारे में शिक्षा दीजिए।" वरुण ने बताया कि अन्न, प्राण, मन, वायु, आदि सब ब्रह्म है। भृगु ने तप कर जाना कि अन्न ही ब्रह्म है। यह ब्रह्म का स्थूल रूप है। जब भृगु ने और तप किया तो कहा कि प्राण ही ब्रह्म है। प्राण की सत्ता बड़ी है। उसके नहीं रहने पर सबकुछ उथल पुतल हो जाता है। वह कई रूपों में खुद को प्रकट करता है। प्राण के रहस्य को जानते हुए ऋषि थक जाते है तो प्रार्थना करते है कि प्राणवायु हमको छोड़ कर नहीं जाए। हमारे जीवन को सुखमय बनाए।

अर्थववेद के ब्राह्मण पिप्पलाद शाखा है, इसके एक भाग को प्रश्नोपनिषद कहा गया है, जिसमें सुकेशा, सत्यकाम, सौर्यायणी, आश्वलायन, भार्गव और कंबंधी ऋषि ने जीव और जगत् पर आधारित सवाल किये। प्राण के संबंध में पूछे गये सवाल में चार जगत् से और एक ब्रह्म से संबंधित है।

हमारे पूर्वजों को प्राण के बारे में जानने की विशेष रुचि थी। उपनिषद में इसपर विशद चिंतन और मनन किया गया है। ऋग्वेद में सृष्टि सृजन के पूर्व देवता नहीं है, लेकिन प्राण का अस्तित्व है।

ईशावास्योपनिषद में दो तरह की वायु का उल्लेख है। एक मनुष्य के शरीर को संचालित करनेवाली और दूसरा अनिल है जो संपूर्ण सृष्टि में परिव्याप्त है। कठोपनिषद (वल्ली एक और मन्त्र सात) में कहा गया है कि अदिति प्राण से उत्पन्न हुई है। प्राण मूल शक्ति है। तैत्तिरीयोपनिषद में प्राण को ही सभी जीवों का आयु बताया है। प्रश्नोपनिषद में सूर्य को संसार का प्राण कहा गया है। प्रश्नोपनिषद में इसपर विशद चिंतन किया गया है। इसमें आदित्य को प्राणवान कहा गया है। यहाँ सूर्य और प्राणियों के बीच एक अन्तसंबंध है। प्राण उस संबंध का शक्ति है। प्राण समस्त जीवन का आधार और सार है।

प्राण भौतिक संसार, चेतना और मन के मध्य का संपर्क सूत्र है। यह प्राण सभी शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रित करता है। हमारे शरीर में ऑक्सीजन की आपूर्ति, श्वास, पाचन, निष्कासन, उत्सर्जन आदि सभी क्रियाओं केलिए प्राण एक केंद्र का काम करता है। जब किसी व्यक्ति का स्पंदन ठीक होता है, तो कहते है कि वह अच्छा प्राण है। योगियों ने जिसे प्राण कहा है, वही सामान्य लोगों केलिए श्वास होता है। श्वास का बाहर जाना और अंदर को आना ही हम प्राण समझते है, जबकि ऐसा नहीं है। दैनिक जीवन में योग के अभ्यास से हमारा प्राण स्वस्थ रहता है। स्वच्छ वायु इस प्राण केलिए जरूरी होता है।

योगियों ने प्राण को पाँच भागों में बांटा है। पहले को **प्राण** यानी सांस कहा जाता है।

दूसरे को **अपान,** जो मलोत्सर्ग में मदद करता है। हमारे पेट की सफाई अपान से होती है। नैति, अग्निसार क्रिया, अश्विनी मुद्रा और मूलबंध विधियाँ अपान प्राण को मजबूत एवं शद्ध करता है।

तीसरे को **समान** कहा जाता है, जो हमारी पाचन शक्ति और शरीर को ऊष्मा प्रदान करता है। यह अनाहत और मणिपूरक चक्र को जोड़ता है। इसकी क्रियाशीलता का ज्ञान होने से व्यक्ति का पाचनतंत्र स्वस्थ रहता है। योगी कम भोजन या उपवास में समान वायु के उपयोग से अधिक ऊर्जा प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार समान प्राण ऊर्जा की सुनिश्चित लयबद्धता से व्यक्ति ठंड में नंगा और गर्म में कपड़ों सहित रह सकता है। इसका प्रयोग हिमालय में रहनेवाले योगी जन करते हैं। यह प्राण अग्निसार क्रिया और नौलि के अभ्यास से सुदृढ होता है। इसको जागृत करने की

सबसे अच्छी विधि क्रियायोग है।

चौथा प्राणवायु को **उदान** कहा जाता है, जो वाणी और संप्रेषण केलिए उपयोग किया जाता है। यह हृदय से सिर और मस्तिष्क में प्रवाहित होता है। इसके जागरण से व्यक्ति शरीर को बहुत हल्का कर सकता है। उसमें हवा में उठने की योग्यता आ जाती है। किसी व्यक्ति के बोलने, गाने और भाषण में जो सम्मोहन दिखता है, उसका कारण यह उदान ऊर्जा होता है। उदान ऊर्जा को सिद्ध करने से योगी पृथ्वी से ऊपर अपने को उठा पाता है। पक्षियों का विशेषकर बड़े पक्षियों का इतनी भार के साथ आकाश में उड़ना, उनकी उदान ऊर्जा के कारण संभव होता है, जो वे जानते हैं। अगर हम श्वास की क्रिया को ऐसा ले कि उदान ऊर्जा का उपयोग हो, तो गुरुत्वाकर्षण से हमारा संबंध टूट जायेगा। उज्जायी प्राणायाम, भ्रमरी प्राणायाम और करणी मुद्रा के अभ्यास से उदान प्राण सक्रिया किया जाता है।

पाँचवीं ऊर्जा को **व्यान** कहते हैं। योगियों का कहना है कि अगर इस व्यान ऊर्जा पर व्यक्ति अपनी निर्भरता कर लेता है, तो उसके शरीर की मृत्यु के बाद भी व्यक्ति जीवित रह सकता है। कई योगी अपनी हृदय गति को रोक कर व्यान ऊर्जा से जीवन को संचारित करत है। ऋषियों ने कहा है कि व्यान ऊर्जा के माध्यम से संपूर्ण अस्तित्व में एक सहसंबंध बना है। जगत् में जो संतुलन है, उसका कारण व्यान है। सूर्य, तारे, आकाशगंगा, नक्षत्र सहित सूपर्ण विराट को जोड़नेवाला तत्त्व प्राण है। इसे गहरा पूरक और रेचक से नियंत्रत किया जाता है।

पाँच उपप्राण

इसके अलावा पाँच उपप्राण माने गये हैं। डकारने की क्रिया को नाग, झपकने की क्रिया को कूर्म, जम्हाई को देवदत, छींकना को कृकल और दिल के वाल्वों को खोलने और बंद करने की क्रिया को धनंजय उप प्राण कहा जाता है। हमारे शरीर के चार क्षेत्रों में प्राणवायु का प्रवाह सबसे गहन होता है जिसमें दोनों पैर के तलवे और दोनों हथेलियों के मध्य में होता है। हथेलियों की ऊर्जा का संबंध हृदय से होता है, जो हवा तत्त्व के कारण धनात्मक प्रभाव पैदा करता है।

शिव और शक्ति संवाद में श्वास

भारतीय परंपरा में पंचतत्त्व एवं उसके नियामक परमतत्त्व का केवल दार्शनिक विवेचना नहीं किया गया है, बल्कि इसको जानने की विधि भी बतायी गयी है। ब्रह्मांडीय ऊर्जा, प्राणशक्ति और जीवन के सत्य को विधिपूर्वक जानने केलिए तंत्र सूत्र दिये गये हैं। यह सूत्र महादेव और महादेवी यानी शिव और शक्ति के बीच सवाल और जवाब पर आधारित है। इसमें शक्ति सवाल करती है और शिव जवाब देते हैं। शक्ति के हरेक सवाल का जवाब होता है कि- दो श्वास के अन्तराल पर अपने को केंद्रित करो। प्राणवायु के गमनागमन के बीच में ठहराव ही परमसत्य की अनुभूति का एकमेव सरल मार्ग है। साँसों पर ध्यान, उसके आगमन और गमन के बीच अन्तराल पर अपने को होशपूर्ण कर देना ही विधि है, जो हमारे सारे भौतिक सवालों का जवाब है।

माता शक्ति सवाल करती है कि- आपका सत्य रूप क्या है? यह जगत् क्या है? इसका बीज क्या है? वह कहाँ स्थित है? रूप से विलग इसका स्वरूप कैसा है? देश और काल की सीमा से पार जो विराट और शाश्वत है, वह क्या होता है? कई सवाल। सवाल की अन्तहीन शृंखला है। शिव कोई ज्ञानपूर्ण, तर्काधारित और विवेकशील ज्ञान नहीं देते हैं। वह विधि बताते हैं। हरेक विधि से उस सत्य की अनुभूति का यह अनूठा प्रयास भारतीय सभ्यता की एक अनुपम देन है। शिव ने 112 विधियाँ बतायीं। इन विधियों को शरीर और मन

के माध्यम से नहीं पकड़ा जा सकता है। इसे ज्ञान या तर्क से भी जानना अधूरा रह जायेगा। इसका मुख्य कारण है कि हमारा हरेक तर्क, ज्ञान की सीमा और हमारी बुद्धि जब कुछ जानना चाहती है तो वह द्वैत का दीवार खड़ी करती है। दो श्वास के बीच कोई द्वैत नहीं है, वहाँ केवल अद्वैत है। इसलिए वहाँ मन नहीं, चित नहीं और शरीर तो निश्चित ही नहीं पहुँच सकता है। अद्वैत एक दशा है, जहाँ बस अनुभूति होती है।

जैसे जीवन का द्वैत है, उसी प्रकार हमारी श्वास का भी द्वैत है। श्वास एक ओर जीवन को स्पर्श करता है, जगत को धारण करता है और शरीर के साथ क्रियाशील होता है। दूसरा छोर वह कालातीत हो जाता है। हमारा सारा ज्ञान जीव, जगत् और जीवन से संबंधित होता है। उसके दूसरे छोर का हमें ज्ञान नहीं है और उस छोर पर ही हमारे अबूझ सवाल का जवाब है। जिस सवाल को माता पूछती है और उसे हजारों साल से ऋषियों ने पूछा है। उसका एकमेव जवाब है। जिसे उस समय ही महादेव ने दुनिय को बता दिया था। सत्य का रूप क्या है? प्राण क्या है? इसका जवाब है- श्वास जब अंदर आती है, और फिर जब बाहर जाती है। ठीक इसके बीच अन्तराल की अनुभूति ही हमारे लिए कल्याणकारी है।

महात्मा बुद्ध ने अपना सारा जीवन ध्यान की विभिन्न विधियों के माध्यम से उसक परमसत्य को जानने में बीता दिया। परमसत्य को जानने केलिए ध्यान जरूरी है, तथा ध्यान केलिए विधियाँ चाहिए। महात्मा बुद्ध ने ज्ञान की प्राप्ति के बाद शिष्यों को विधियाँ सिखायीं। दो श्वास के बीच अन्तराल पर ध्यान पर शिव का जोर था, वहीं महात्मा बुद्ध की देशना के केंद्र में रहा। यह श्वास का आवागमन कोई समानांतर रेखाओं में नहीं होती है। यह एक पूरा वर्तुल बनाता है। श्वास का आगमन आधा गोला है, और उसका गमन आधा गोला है। आवागमन मिलकर एक पूरा गोला बनता है।

श्वास के आवागमन के माध्यम से यह वर्तुल हमारे विशाल शरीर में लगातार बन रहा है। हमारा शरीर में करोड़ों की संख्या कोशिकाएँ हैं। ये सारी कोशिका जीवित शरीर की भाँति क्रियाशील होती है। इसके सम्मिलित रूपों से हमारा शरीर गतिशील दिखता है। जीवन का अर्थ है कि हमारी कोशिकाएँ गतिमान है। उसमें श्वसन, परिवहन, उत्सर्जन, संचरण, पाचन आदि सभी संरचनात्मक क्रियाएँ होती है, जो हमारे शरीर में होती है। ऐसे में जब हम दो श्वास के मध्य रुक गये, तो हम काल और देश की सीमा के अन्तराल से परे चल जाते हैं, जहाँ बस वह वर्तुल रह जाता है। जहाँ वर्तुल में हमारी केवल प्राणवायु क्रियाशील दिखती है। वहाँ न कोई तत्त्व होता है, न कोई शरीर का सूक्ष्मतम अंश। कोशिका से सूक्ष्म अणु और परमाणु का संचरण होता है। वह स्थिति केवल ऊर्जा या ध्वनि की होती है। विज्ञान भी मानता है कि मूलतत्त्व अन्त में ऊर्जा रूप में रहती है। सारी ध्वनि, सारे तत्त्व, सारा जीवन बस उस ऊर्जा का प्रकटीकरण या घनीभूत रूप होता है। ध्यान के माध्यम से जिस अन्तराल पर जाने को शिव कहते हैं, वह अन्तराल द्वैत के परे इस अद्वैत का है।

प्राणायाम का विज्ञान

प्राण एक चैतन्य ऊर्जा है जो चर और अचर सब जगह व्याप्त है। यह जड़ और चेतन के केंद्र में अवस्थित है। चेतन में यह सक्रिय है और जड़ में सुषुप्तावस्था में पड़ा है। यह अस्तित्व का सूक्ष्तम मूलतत्त्व है जो जीवन, बल, क्रिया, शक्ति और गति का आधार है। मनुष्य को जीवित रहने केलिए प्राणशक्ति चाहिए जो उसे वायु, जल, अग्नि, विचार, परिवेश, से मिलता है। प्राण तत्त्व की प्रचुरता वायु में होती है। इसलिए इसे प्राणवायु कहा जाता है। प्राण की सत्ता वायु से भिन्न होने के कारण ऑक्सीजन देने के

'The Sundhya or the daily prayers of the Brahmins.' By Belnos, S.C, 1851, की चित्र संख्या 6 से साभार।

बाद भी मृत व्यक्ति को जीवन नहीं दिया जा सकता। इस कारण प्राणायाम का महत्व है। इसके कई आयाम है। वायु में प्राण की प्रचुरता है और उस प्राणवायु को प्राणायाम के श्वसन क्रिया के माध्यम से खींचकर अपने शरीर में लाते है, जिससे शारीरिक और मानसिक शक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार श्वास और प्रश्वास के लयात्मक और सुव्यवस्था को प्राणायाम कहा जाता है।

प्राणायाम में हम साँस को तेज नहीं करते है, बल्कि इसको क्रमबद्ध और लयबद्ध करते है ताकि शरीर के सभी कोशिकाओं को जीवित रहने केलिए रक्त, वायु और ऊर्जा की आपूर्ति हो सके। जिस अनुपात में यह संरचरण होगा, उसी अनुपात में हमारी कोशिकाएँ सजीव, स्वस्थ और सुदृढ़ हो पाती है। सामान्यतः हम आधी-अधूरी साँस लेते हैं, जिससे हमारे फेफड़ा का छठा भाग भाग ही चैतन्य हो पाता है, बाकि भाग निष्क्रिय रहता है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि इस कारण दूषित कार्बन तत्त्व रक्त संचरण के माध्यम से बाहर नहीं निकल पाते है और वे पुनः वापस फेफड़ों में इकट्ठा हो जाते हैं, जिसके कारण कई प्रकार की बीमारी होती है। हमारे शरीर में शुद्ध रक्त का चौथाई भाग ऑक्सीजन होता है। यह ऑक्सीजन ही लाल रक्त कणिकाओं के साथ मिलकर हिमोग्लोबीन बनाते है। जो शरीर को सक्रिय, स्वस्थ और स्फूर्ति प्रदान करते हैं।

प्राणायाम का काम शरीर में ऊर्जा और विद्युत तरंग की तरह काम करते है। हमारे शरीर में लाखों की संख्या में सूक्ष्म नाड़ियाँ होती है, जिसमें कई नाड़ियों का विस्तार मस्तिष्क और मेरुदंड तक होती है। प्राणायाम के माध्यम से ब्रह्मांडीय ऊर्जा और विद्युत् तरंग का प्रवाह समस्त नाड़ियों एवं स्नायुतंत्र तक फैल जाते है। प्राणायाम से नाड़ियों का परिशोधन होता है। यह हमारे शरीर की मांसपेशियों के संकुचन, नर्वस सिस्टम, हार्मोन और गलैंड्स को प्रभावित करती है। इसी प्रकार हमारे शरीर को बनाने में स्टेम सेल की अहम भूमिका होती है। यह 200 प्रकार की होती है।

जब हम प्राणायाम करते है तो मेरुरज्जु, मस्तिष्क, मेरुदंड, त्वचा और रक्त कोशिकाओं में स्थित स्टेम सेल हमारे शरीर में बिना की ऑपरेशन के अंग-प्रत्यंग को ठीक करते है, जहाँ इसकी जरूरत होती है। प्राणायाम से न केवल स्टेम सेल अंग की मरम्मत करते है बल्कि इसकी संख्या में भी बढ़ोत्तरी में प्रमुख कारक होते हैं।

प्राणायाम का तीहरा लाभ है। शरीर के स्तर पर यह तंत्रिका तंत्र, ग्रन्थ तंत्र, श्वास तंत्र, रक्त के परिसंचरण तत्र और पाचन तंत्र को प्रभावित करता है। प्राणायाम के दबाव के कारण रक्त का संचरण बढ़ता और सुचारु होता है। मानसिक स्तर पर प्राणायाम हमारे स्नायुमंडल को प्रभावित करता है। यह हमारी चेतना और बुद्धि के विकास में सहयोगी होता है।

शेष पृ. .... पर

व्यावहारिक योग में वायु-साधना

श्रीमती मञ्जरी बिनोद अग्रवाल
मदिनागुडा हैदराबाद, तेलंगाना

प्राणायाम वैदिक पद्धति में प्राचीन काल से सन्ध्यावन्दन के रूप में किया जाता है। आगम की सन्ध्या-पद्धति में भी प्राणायाम आवश्यक है। इसमें पूरक, कुम्भक तथा रेचक तीन चरण होते हैं। इससे शरीर में वायु का नियन्त्रण होता है, जिससे हमारा शरीर स्वस्थ तथा टिकाऊ होता है। यह प्राणायाम किस प्रकार हमारे शरीर के किस अंग को प्रभावित करता है, तथा पाँच प्रकार के वायु की साधना किस प्रकार की जाती है, इसके मन्त्र तथा मुद्राएँ कैसी हैं, इन सब प्रश्नों का उत्तर योग की व्यावहारिक प्रणाली में दिया गया है। यह भारतीय परम्परा में आज तक व्यवहार में है। हम इसी अंक के एक आलेख के साथ पढ़ेंगे कि भोजन के समय भी पाँच वायुओं के निमित्त अन्न की आहुति मुख रूपी अग्नि में दी जाती है, जो 'पंचकवल' अथवा 'पंचग्रास' के नाम से प्रसिद्ध हैं। हमारे शरीर में इसके प्रयोजन तथा पर यहाँ प्रकाश डाला गया है। यह स्वस्थ शरीर की कुंजी है।

प्रत्येक मनुष्य जिन 5 तत्त्वों से बना है, उनमे वायु तत्त्व एक है, वायु का दिक् स्थान अथवा दिशा वायव्य कोण है, जो पीठ पर बायीं ओर स्थित है। वायव्य कोण का बीज मन्त्र 'आ' है। *(चित्र संख्या- 1)* अनहद चक्र वायु का स्थान है, अतः 'य' बीज मन्त्र है। अनाहत की 12 पंखुरी हैं, जिनके बीज क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ हैं। इसे चक्र को चित्र संख्या 2 में देखा जा सकता है।

वायु के पाँच प्रकार हैं –प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान।

पांच उप वायु हैं- नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय।

इन पाँच वायु की साधना में निम्नलिकित मन्त्र प्रयुक्त होते हैं-

प्राण वायु - **ॐ प्राणाय स्वाहा।**
अपान वायु- **ॐ आपानाय स्वाहा।**
समान वायु - **ॐ समानाय स्वाहा।**
उदान वायु- ॐओम उदानाय स्वाहा।
व्यान वायु- ॐ व्यानाय स्वाहा।

इस आलेख में आगे हम इन पाँचो वायु की साधना के व्यावहारिक पक्ष, उनके मन्त्र तथा मुद्राओं का वर्णन करेंगे। हस्तमुद्राएँ योगसाधना में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होतीं हैं। अतः इन्हें ठीक से मझने केलिए गये हैं।

हमारे प्राचीन काल के योगियों की आयु अधिक होती थी, उन्हें रोग अपेक्षाकृत कम होते थे। वे वृद्धावस्था में भी सैकड़ों मील की यात्रा सुगमता से कर लेते थे, इसके पीछे उनकी योगसाधना थी। आज भी कुछ ऐसे साधक हैं जो इनका लाभ उठा रहे हैं।

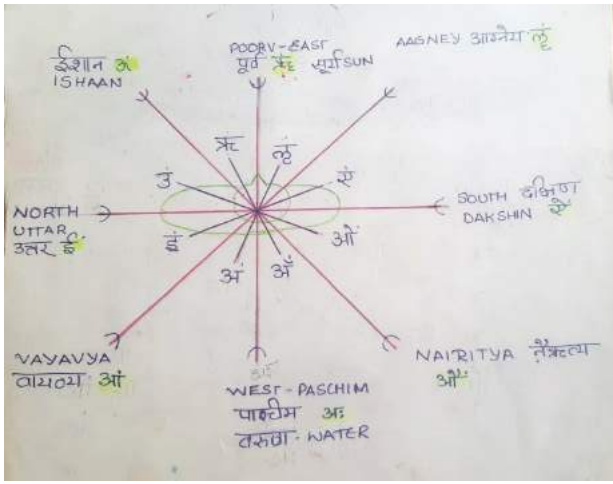

चित्र सं. 01- दिक् चक्र, वायव्य कोण एवं उसका बीज

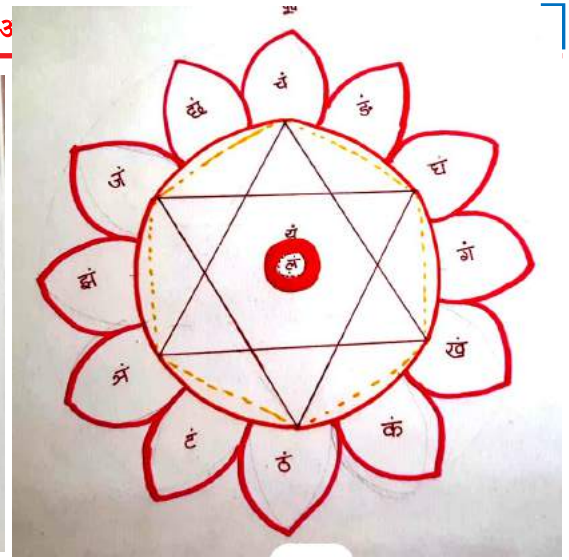

चित्र संख्या– 02 : अनाहत चक्र एवं दलों के बीज

प्राण वायु

प्राणवायु श्वास को कहते हैं। यह फेफड़े और हृदय का स्थान है। अनाहत चक्र से विशुद्धि तक के क्षेत्र को संचालित करती है। *(चित्रसंख्या 5 देखें)* इसमें हृदय की मांसपेशियों का संचालन हृदय से निकलनेवाली रक्त वाहिकाओं का संचालन तथा नाड़ियों नसों का संचालन होता है।

वायव्य कोण का बीज मन्त्र 'आं' है, जो बीजाक्षर 'आ' और अर्धमात्रा अनुस्वार से मिल कर बना है। इसके सही उच्चारण से चैतन्य का प्रवाह होने लगता है। अनाहत चक्र भी वायु तत्त्व प्रधान है। यहीं फेफड़ों मे शुद्ध वायु को ग्रहण कर प्राण धारण करते हैं। देवी प्राणधारिणी हमारे प्राणों की रक्षा करतीं हैं। अनाहत के केन्द्र का बीज मन्त्र यं है। साथ ही, 12 दलों के बीज क्रमशः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं हैं। (चित्रसंख्या 2 देखें)

प्राण वायु मस्तक, छाती, कण्ठ, जीभ, मुख, नाक, मूर्धा मे रहती है। यह मन की प्रणेता व नियंता है। मन का कार्य क्षेत्र मस्तिष्क है। अतः मनप्रीत नियंत्रण कर हम इंद्रिय निग्रह कर सकते हैं। इस प्रकार हम 5 कर्म इंद्रिय 5 ज्ञानेन्द्रियों को नियंत्रण मे ले सकते हैं। मन के स्थिर होने से सब काम बन जाते हैं। अतः ऊर्जा का सही उपयोग होता है। प्राण वायु शरीर में अन्न को ले जाती है। यानी जो peristalsis movement of ducts है, उसे सुचारु रूप से चलाती है। अन्न से मिली शक्ति से हम प्राण धारण करते हैं। यही देवी प्राण धारिणी की शक्ति के अन्तर्गत मानी गयी है। प्राण नाभि से हृदय, हृदय से फेफड़ों मे जाता है। शोधित होता है। यही श्वास की प्रक्रिया है। अतः प्राण मुद्रा लगा कर देवी प्राण धारिणी का स्मरण करना चाहिए। यह मुद्रा मूलाधार चक्र को सक्रिय कर शरीर में प्राण शक्ति का प्रवाह करती है। मूलाधार चक्र से जुडे अवयव जैसे prostate gland, urinary duct आदि से संबंधित रोगों से मुक्ति होती है। रक्त का प्रवाह निर्बाध होता है, यानी blood vessel blockage और blood clots से मुक्ति। high BP या low BP से छुटकारा। प्राण मुद्रा को कफकारक अथवा पित्त नाशक मुद्रा के नाम से भी जाना जाता है। भय नाश करती है। मन पर सकारात्मक प्रभाव पडता है। मनोबल बढता है, अनिद्रा दूर होती है। चिंता डिप्रेशन से मुक्ती। शक्ति स्फूर्ति का संचार पूरे शरीर मे होता है। पुष्टिप्रद व क्षुधा नियंत्रण होता है। शरीर केलिए आवश्यक तत्त्वों का भी प्रवाह होता है।

इस वायु का प्रभाव मन पर भी पड़ता है। यह द्वंद की स्थित से उबारता है, संशय दूर करता है। शरीर रोगमुक्त होता है व नवीनीकरण होता है। यानी anti aging and rejuvenating. मधुमेह नेत्र रोग नाक कान गले के रोग से मुक्ति।

अपान वायु

अपान वायु का कार्य है- श्वास छोड़ना यानी मतलब निकालना। जो भी शरीर केलिए अनावश्यक है, उसका त्याग इसी अपान वायु से होता है। इसका क्षेत्र मणिपुर से मूलाधार पर्यंत है। यह वायु इस अवस्थित अंगों का पोषण करता है- जैसे वृक्क मूत्रालय, जननांग, गुदा, आँत आदि। कार्य वातावरण, मल, मूत्र, शुक्राणु, अखण्ड उत्सर्जन व गर्भ का पोषण तथा आसान प्रसव।

समान वायु

समान वायु का क्षेत्र मणिपुर से अनाहत चक्र पर्यंत होता है। इसका कार्य अर्क का निर्माण होता है। यह वायु शरीर के निम्नलिखित अंगों को प्रभावित करता है- Pancreas, यकृत, प्लीहा, आँत, bile duct, duodenum, एवं आमाशय। यह वायु भोजन को भलीभांति पचा कर अर्क का निर्माण करता है और फिर इस भोजन के अवशोषण से पुष्ट शरीर बनता है। भोजन से अर्क, अर्क से रस, रस से मास, मास से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा, मज्जा से शुक्र की उत्पत्ति होगी। विभिन्न अंगों से रसों का उत्पादन व उत्सर्जन, हार्मोन संतुलन, अग्नि बल की वृद्धि, ठण्ड से उत्पन्न रोगों से मुक्ति, तथा तेज जठराग्नि का कारक है। इस साधना से पराक्रम व शक्ति का संतुलन तथा शक्ति की सिद्धि से शरीर दीप्त होगा।

उदान वायु

उदान वायु का क्षेत्र विशुद्धिचक्र से सहस्रार पर्यंत है। यह 5 इन्द्रियाँ, 5 तत्त्व, 5 ज्ञानेन्द्रिय, 5 तन्मात्रा को प्रभावित करती है। चेहरे के भाव, आंख का संचालन, भोजन निकलना, मस्तिष्क का संचालन, थायरॉइड ग्लैंड का संतुलन, दर्द नाश, नीरोग काया, मोटापा घटाने मे सहायक, मानसिक स्थिरता, स्मरण शक्ति, समझदारी, शान्ति, सूक्ष्म शरीर को जानने व शुद्ध करने की क्षमता तथा निर्लिप्त भाव का जागरण होता है। स्वप्न में भी सचेत रहने की क्षमता ऊर्ध्व गति का

प्राण मुद्रा

अपान मुद्रा

समान मुद्रा

उदान मुद्रा

चित्र संख्या– 03

चित्र संख्या– 04 : व्यान मुद्रा

कारक यह वायु है।

व्यान वायु

व्यान वायु का क्षेत्र संपूर्ण शरीर होता है। योग की भाषा में सहस्त्रार से पैरों तक व्यान वायु प्रसृत रहता है। (देखें, चित्र संख्या 5) यह रक्त संचार नियंत्रित कर शरीर के हर अंग तक वायु पहुँचाती है तथा लतिका संचरण से रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास करती है। खराब वात को सामान्य करना भी इसकी विशेषता है। थकान शिथिलता पर नियंत्रण व शरीर की गर्मी को कम करती है। व्यान की साधना से स्फूर्त व स्वस्थ हृदय रहता है तथा आलस्य व चक्कर आना बंद हो जाता है। गति तथा अंगों को फैलाना व संकुचन तथा कार्यान्वयन प्रमुख कार्य है।

उप प्राण

यह भी 5 प्रकार के होते हैं।

1 नाग- यह हिचकी व डकार रूप में शरीर में स्थित होता है। यह प्राण और अपान के मध्य उत्पन्न रुकावटों को दूर करता है। पाचन तन्त्र में वात (गैस) का बनना रोकता है। डकार लाता है। अपचन के कारण मितली को रोकना। समान प्राण के अवरोधों का हल करना।

2. कूर्म- पलक झपकाना। जाग्रत अवस्था मे उप-प्राण की ऊर्जा तब सक्रिय होती है। कूर्म धूल और अन्य अवांछित वस्तुओं आदि को आंखों में घुसने से रोकता है। ॐ उच्चारण की तरह त्राटक के अभ्यास से कूर्म वायु सन्तुलित होता है। इसकेलिए गर्म हथेलियों को आंखों पर रखे। आसन जिनमें सिर आगे झुकाया जाता है उन्हे करें।

3. देवदत्त- निद्रा तथा जम्हाई का कारक है। समान प्राण जैसी इसकी क्रिया होती है।

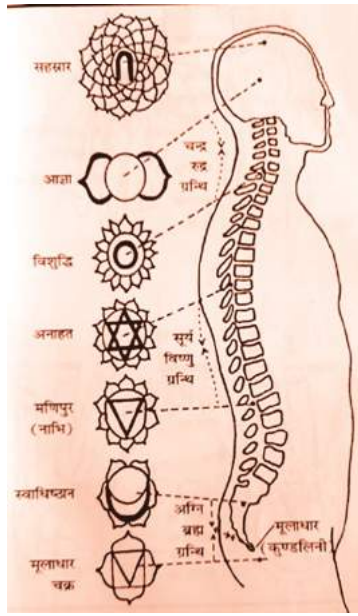

चित्र संख्या– 05 : शरीर के चक्र

4. कृकल- भूख प्यास छींक। श्वास -तन्त्र में आये अवरोधों को दूर करता है। छींक सिर और गर्दन में ऊर्जा प्रवाह की रुकावटों को दूर कर सुगम कर देता है। छींक को दबाना नहीं चाहिए, क्योंकि इससे ग्रीवा रीढ़ में कशेरुका प्रभावित हो सकती है। जोर से और दृढ़ छींक स्वस्थ शरीर व कमजोर छींक कमजोर स्फूर्ति को दर्शाता है।

5. धनंजय- मृत्यु के बाद शरीर अपघटित करना। हृदय के वाल्व को खोलना बंद करना। धनन्जय हृदय के निकट स्थित होता है। हृदय की मांसपेशियों को - हृदय के वाल्वों को खोल एवं बन्द करता है।

प्राण-शक्ति को सक्रिय करती हैं। ये हैं भस्त्रिका, नाड़ी-शोधन और उज्जायी-प्राणायाम, नौलि, अग्निसार -क्रिया, अश्विनी मुद्रा और मूल-बन्ध विधियाँ अपान प्राण को मजबूत और शुद्ध करने का कार्य करती हैं।

व्यान प्राण कुंभक (श्वास संग्रह कर रखना) के अभ्यास से सुदृढ़ और सक्रिय होता है। प्रत्येक सहज श्वास मे, हर पूरक और रेचक के मध्य एक स्वत: ठहराव होता है। प्राणायाम के अभ्यास से, यह ठहराव लम्बा हो जाता है। हम जब श्वास को रोकते हैं, तो एक दबाव-निर्माण होता है। इस दबाव के प्रभाव से ऊर्जा की रुकावटें खुल जाती हैं। कुंभक नाड़ी-तन्त्र को प्रोत्साहित करता है। जिस व्यक्ति ने कुंभक व महा -बन्ध विधियों को किया उसे शान्ति मिलती है। इसके

बाद अच्छी तरह ध्यान लगता है। उज्जायी प्राणायाम, भ्रमरी प्राणायाम और विपरीतकरणी मुद्रा के अभ्यास से भी उदान प्राण सक्रिय हो जाता है। समान प्राण अग्निसार क्रिया एवं नौलि के अभ्यास से सुदृढ़ होता है।

इस प्रकार, वायव्य कोण वायु से सम्बन्धित कोण है। अष्ट दिक्बन्ध में सभी दिशाओं से रक्षा हेतु देवताओं से प्रार्थना कर उन्हें उनकी दिशा में स्थापित करते हैं। इस क्रम मे वायव्य कोण के स्वामी वायु देवता हैं। अनाहत चक्र पर भी वायु का स्वामित्व है। अतः हम दोनों दृष्टिकोण साथ मे लेंगे। श्रीचक्र के अध्ययन करने पर 14 पंखुड़ियोंवाला चतुर्दशार सर्वसौभाग्य चक्र है। यह दोनों चक्र घडी की विपरीत दिशा anti clockwise घूमते है आत्मलिंग भी उल्टा घूमता है अनाहत व आत्मलिंग मे पंखुडी संख्या 12 है। वही 7 मरुतों के विभाजन से 49 मुताबिक की प्राप्ति वेदों मे बतायी गयी है।

वायुपुत्र श्रीहनुमान के वंदन से भी वायु-तत्त्व का नियंत्रण होता है, जिससे उपर्युक्त लाभ होते हैं।

***

"परमात्मा की प्राणशक्ति को प्रणाम"— पृ. ... से शेषांश

प्राणायाम के कारण शरीर में तमस और रजस गुण में कमी आती है और सतस गुण का विकास होता है।

स्वामी शिवानंद अपनी किताब 'दी साइंस ऑफ प्राणायाम' में लिखते हैं कि- श्वास ब्रह्म है। प्राण ब्रह्मांड में प्रकट होनेवाली सभी ऊर्जाओं का कुल योग है। यह प्रकृति की सभी शक्तियों का योग है। यह उन सभी अव्यक्त शक्तियों और शक्तियों का कुल योग है जो मनुष्यों में छिपी हुई हैं और जो हमारे चारों ओर हर जगह मौजूद हैं। ताप, प्रकाश, विद्युत, चुम्बकत्व प्राण की अभिव्यक्तियाँ हैं। प्राण की यह क्रिया हृदय की सिस्टोलिक और डायस्टोलिक क्रियाओं में देखी जाती है, जब यह साँस लेने के दौरान प्रेरणा और समाप्ति की क्रिया में रक्त को धमनियों में पंप करता है। इसकी क्रिया भोजन के पाचन में, मूत्र और मल के उत्सर्जन में, आमाशय रस, पित्त, आंत्र रस, लार के निर्माण में, पलकें बंद करने और खोलने में, चलने में, खेलने में, दौड़ने में, बात करने में, सोचने में, तर्क करने में, महसूस करने में और चाहने में होता है। ओशो कहते है कि श्वास का बाहर जाना है प्राणायाम और भीतर आना है प्रत्याहार। इस प्रकार यह समूची सृष्टि ही परमात्मा का प्राणायम है। सृष्टि का जन्म प्राणायाम है और उसका विसर्जन प्रत्याहार है। विज्ञान का काम पदार्थ पर है। वह ऑबजेक्टिव रूप में क्रियाशील है और प्राणायाम का काम सबजेक्टिव यानी आत्मगत है। एक जगत की खोज करता है, दूसरा जगत के नियंता की खोज करता है, जिससे यह जगत है।

इस प्रकार हमारे जीवन से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त वायु सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में सामने आता है।

***

वैशेषिक दर्शन के अनुसार वायुतत्त्व

डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य

व्याकरणाध्यापक, श्रीराम संस्कृत महाविद्यालय, सरौती, अरवल। पटना आवास- ज्योतिष भवन, शिवनगर कालोनी, मार्गसंख्या 10, बेऊर जेल के पीछे, पटना।

वेद से सम्बद्ध छह दर्शनों में वैशेषिक पदार्थ विज्ञान है, जिसमें सात पदार्थों में से द्रव्य पदार्थ के अन्तर्गत वायु एक द्रव्य है। अन्नम्भट्ट लिखते हैं- रूपरहितस्पर्शवान् वायुः। स द्विविधः । नित्योऽनित्यश्च। नित्यः परमाणुरूपः। अनित्यः कार्यरूपः। पुनस्त्रिविधः शरीरेन्द्रियविषय भेदात्। शरीरं वायुलोके। इन्द्रियं स्पर्शग्राहकं त्वक् सर्वशरीरवर्ति। विषयो वृक्षादि कम्पनहेतुः। शरीरान्तःसंचारी वायुः प्राणः। स चैकोऽप्युपाधिभेदात् प्रणापानादिसंज्ञां लभते। वैशेषिक दर्शन में उक्त 24 गुणों में से वायु में स्पर्श गुण तो है, किन्तु रूप गुण नहीं है। नौ द्रव्यों में एक आत्मा भी द्रव्य है, आत्मा तथा वायु में भिन्नता तथा साम्य पर दर्शन शास्त्र में गम्भीर चिन्तन हुआ है। यदि दोनों में साम्य है तो फिर अलग अलग उल्लेख क्यों? वेदान्ती आत्मा को मानते हैं, किन्तु वैशेषिक वायु को मानते हैं। इन गम्भीर विषयों के ज्ञान केलिए अनेक ग्रन्थ इस परम्परा में लिखे गये हैं। यहाँ लेखक ने वैशेषिक दर्शन की दृष्टि से वायु द्रव्य का सामान्य विवेचन प्रस्तुत कर विषय-प्रवेश कराने का महनीय कार्य किया है।

भारतीय परम्परा में छह वैदिक दर्शनों में से वैशेषिक दर्शन पदार्थ विज्ञान है, जिसमें सात पदार्थों- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय एवं अभाव का विवेचन किया गया है। आधुनिक भौतिकी तथा रसायन शास्त्र दोनों का समाहार वैशेषिक दर्शन में है। यह इन दोनों आधुनिक विषयों की भारतीय परम्परा है। इस वैशेषक दर्शन के प्रणेता कणाद मुनि माने गये हैं।

इस काणादीय वैशेषिक सिद्धान्त के अनुसार अनन्त पदार्थों को उपर्युक्त सात रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है। इनमें सबसे पहले परिगणित द्रव्य के नौ भेद होते हैं- पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा तथा मन। इन द्रव्यों में चौथा वायु है। इसके स्वरूप का विश्लेषण वैशेषिक दर्शन में तार्किक दृष्टि से किया गया है।

अन्नम्भट्ट प्रणीत तर्कसंग्रह नामक ग्रन्थ वैशेषिक दर्शन का आधारभूत ग्रन्थ है की परिभाषा दी गयी है- रूपरहितस्पर्शवान् वायुः। सामानाधिकरण्य सम्बन्ध से रूपाभावविशिष्ट स्पर्शवान् को वायु कहते हैं। इसके अनुसार वायु का रूप तो नहीं होता है, किन्तु स्पर्श गुण मौजूद रहता है। अतः निश्चित ही वायु द्रव्य है और द्रव्य निश्चित रूप से किसी न किसी गुण को धारण करता है। वह गुणाश्रयी होता है। गुण गुणी का शोभाधारक होता है।

रूपाभावविशिष्ट स्पर्शवान् पारिभाषिक लाक्षणिक

परिधि में पृथ्वी, जल एवं तेज रूप तथा स्पर्श दोनों का आश्रय होते हैं, दूसरी ओर आकाश आदि द्रव्यों में रूप गुण के अभाव के साथ साथ स्पर्श गुण का भी अभाव रहता है। इस प्रकार वायु को छोड़कर आठों में रूपाभावविशिष्ट स्पर्श का अभाव होता है। अतः इन आठों से पृथक् वायु रूप गुण से रहित तथा स्पर्शगुण से युक्त द्रव्य है।

शून्य आकाश में त्रसरेणु से परमाणु तक असंख्य कणों का संधारण-संचारण होता है। संधारक के विना संधारण संभव नहीं है, पृथ्वी, जल तथा तेज में संधारकता का अभाव है। अतः उन असंख्य कणों के संधारण-स्थिति को देखते हुए संधारक के रूप में निश्चय वायु रूप द्रव्य को मानना होगा। एतावता सुस्पष्ट गुणाश्रयता-संचरण में वायु सर्वविध द्रव्य ही है।

किसी विद्वान् ने वायु को गुण रूप में वर्णित किया है जो स्वरूपबोध विषयक भ्रम है। वैज्ञानिकों ने भी वायु में भार सिद्ध किया है। एतदर्थ भार मापक यंत्र का भी है, किन्तु वायु में जो भार है वह वायु द्वारा अवशोषित पृथ्वी एवं जल का भार है। इसलिए नमीयुक्त वायु भारी तथा गर्म वायु, जिसमें जलतत्त्व की कमी है, वह हल्का होता जाता है। इस प्रकार वैशेषिक दर्शन के अनुसार शुद्ध वायु भाररहित है।

वायु एक आघातक द्रव्य भी है। तीव्र वायु में वृक्ष आदि उखड़ जाते हैं। वायु के प्रवाह में जहाँ कहीं भी अवरोध होता है, वायु उसे उखाड़ देता है। इसका कारणता पृथ्वी, जल एवं तेज में नहीं है। अतः वायु की आघातकता सिद्ध होती है।

इस प्रकार, चराचर जगत् की आन्तरिक शक्ति का संचारक वायु द्रव्य है जिसपर समस्त चराचर जगत् का जीवन अवलम्बित है। अतः विश्व के मंगल केलिए वायुतत्त्व का संरक्षण प्राथमिक रूप से अनिवार्य है।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार वायु द्रव्य के दो प्रकार हैं- नित्य और अनित्य। परमाणु रूप वायु नित्य है।

“इस प्रकार वायु को छोड़कर आठों में रूपाभावविशिष्ट स्पर्श का अभाव होता है। अतः इन आठों से पृथक् वायु रूप गुण से रहित तथा स्पर्शगुण से युक्त द्रव्य है।”

द्व्यणुक से महाविप्लव (प्रबल प्रचण्ड आँधी) तक वायु अनित्य है। किसी भी पदार्थ की शाश्वत सत्ता केलिए परमाणु सत्ता की स्वीकृति केलिए परमाणु की सत्ता स्वीकृत तथा व्यावहारिक है। अतः द्रव्य विश्लेषण के क्रम में परमाणु रूप वायु की स्वीकृति वायु रूप द्रव्य के नित्य रूप की स्वीकृति है।

अनित्य वायु के तीन भेद किये गये हैं, जो शरीर, इन्द्रिय तथा विषय के भेद पर आधारित हैं। इस शरीर रूप वायु का अस्तित्व वायुलोक में माना गया है। पुराणों में इसी शरीर रूप वायु को प्रेत-पिशाचादि की संज्ञा दी गयी है। इन्द्रिय रूप वायु सर्वशरीरवर्ती त्वक् (त्वचा) ग्राही है। क्योंकि विद्युत् व्यजन वायु के अनुष्ठान से स्पर्शज्ञापकता ही वायु में है। अतः स्पर्शातिरिक्त रूपादि गुणों का अभाव इसमें हैं।

तेज वायु चलने पर वृक्ष आदि में जो कम्पन होता है वह वायु विषय है। वहाँ वृक्ष आदि विषय के कम्पन क्रिया का वह कारक हो जाता है। शरीरान्तःसंचारी वायु प्राणवायु है, वह वस्तुतः एक है। शरीर के भीतर स्थान भेद से वायु के पाँच औपाधिक भेद हो जाते हैं-

वैदिक विधि से भोजन के समय उदर की विहित स्थिति

प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान।

भोजन काल में प्रथम पाँच ग्रास वायु के नाम

वैदिक परम्परा में भोजन करने के क्रम में देवताओं को अर्पित करने के बाद प्रथम पाँच ग्रास इन्हीं पंच वायु के नाम से भोजन किया जाता है- ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा एवं ॐ व्यानाय स्वाहा। इसे 'आपोशन' कहा जाता है। इस आपोशन के बिना भोजन को अहितकारक माना जाता है।

आज भी यह परम्परा सनातनी लोगों में है। इसका पालन अवश्य करना चाहिए। इस विधि में सर्वप्रथम अन्न का जल से अभिषेचन करते हैं तथा अन्न तेज, शुक्र, अमृत, धामनामा, देवानां प्रिय, अनाधृष्ट तथा देवयजन मानकर सिंचित करने का विधान है। इसके बाद हाथ में जल लेकर उपस्तरण किया जाता है। उपस्तरण का अर्थ है- आधार निर्माण करना। इसके बाद प्रथमतः प्राणादि वायु के निमित्त पाँत कौर अन्न उपर्युक्त मन्त्र के साथ भोजन किया जाता है। इसके बाद लौकिक शरीर की पुष्टि के निमित्त यथेष्ट भोजन कर पुनः थोड़ा जल हाथ में लेकर 'अपिधान' (अच्छादन) बनाया जाता है। इस वैदिक विधि में पंचग्रास वस्तुतः शरीरस्थ वायु के निमित्त अन्न ग्रहण है।

रामचरित के अनुसार अयोध्यावासियों के द्वारा जनकपुर में भोजन के समय आपोशन विधि से पंचवायु के निमित्त भोजनांश दिया गया था।

पंच कवल करि जेवन लागे।
गारि गान सुनि अति अनुरागे।
भाँति अनेक परे पकवाने।
सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने॥1॥

-बालकाण्ड, 329.

इस प्रकार वायु के परम विशिष्ट सर्वविध हितकारी, चराचर जगत् का प्राणाधार है। पर्यावरण विशुद्धि प्रक्रिया में सर्वाधिक वायु के निर्मलीकरण की आवश्यकता है। एतदर्थ वानस्पतिक जगत् संधारक है। अतः वायु के निर्मलीकरण में वनस्पति जगत् का महत्त्वपूर्ण अवदान है। शारीरिक स्वस्थता तथा मानसिक निर्मलता के संचार में वायु का सर्वाधिक अवदान वरदान तथा योगदान है। एतदर्थ ही प्रतिदिन प्राणायाम विधि अनिवार्य कर्म के रूप में स्वीकृत है।

***

वायु देवता का उद्भव और विकास

प्रस्तुत निबन्ध **डा. गयाचरण त्रिपाठी** की पुस्तक 'वैदिक देवताओं का उद्भव एवं विकास' से साभार उद्धृत किया गया है। डा. त्रिपाठी गंगानाथ झा केन्द्रीय विद्यापीठ, प्रयाग के प्राचार्य रह चुके हैं। उनकी यह पुस्तक वैदिक देवताओं के स्वरूप तथा पुराणों में विकास पर प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। (सं.)

वायु एक ऐसे देवता हैं जिनकी धारणा का विकास अग्नि की भाँति अत्यन्त स्थूल एवं सर्वत्र दृश्यमान भौतिक तत्त्व से हुआ है। देवत्व का एक झीना-सा आवरण उनके ऊपर पड़ा हुआ है। ये अन्तरिक्ष के प्रतिनिधि देवता हैं, इसलिए अन्तरिक्ष के सर्वप्रमुख देवता इन्द्र से उनका प्रायः तादात्म्य किया गया है और दोनों में से किसी को भी अन्तरिक्ष का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देवता मान लिया जाता है।[1] इन्द्र और वायु का ऋग्वेद के कुछ सूक्तों स्तवन किया गया है। शतपथ ब्राह्मण 4.10.3.19 में 'यो वै इन्द्रः स वायुः' आदि शब्दों से दोनों का तादात्म्य सूचित किया गया है।

वायु का पर्यायवाची ऋग्वेद में वात भी है। पर यह वायु के देवत्व की अपेक्षा उनके तीव्रता से प्रवहित होनेवाले भौतिक रूप का अधिक परिचायक है और इसलिए इसका पर्जन्य के साथ अधिक उल्लेख हुआ है।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (10.90) में वायु को आदि-पुरुष के प्राणों से उत्पन्न बताया गया है (प्राणाद् वायुरजायत, मन्त्र 13)। प्राणों से वायु का यह सम्बन्ध समस्त संस्कृत साहित्य में प्राप्त होता है। अथर्ववेद 11.4.15 का वक्तव्य है कि वायु को ही प्राण कहा जाता है (प्राणमाहुः मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते)। इसी प्रकार तैत्तिरीय संहिता 5.1.5 में भी प्राण एवं वायु का तादात्म्य किया गया है-

सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातु इत्याह। प्राणो वं वायुः। प्राणेनेवास्यै प्राणान् संदधाति।

तैत्तिरीय संहिता 22.1 में वायु को 'नियुत्वत्' कहा गया है। नियुत् का अर्थ समूह या गण होता है। वायु के प्रसंग में सम्भवतः यह मरुतों को सूचित करता है। इसी प्रसंग में वायु को प्राण तथा इस नियुत् (मरुद्गण) को अपान बताया गया है (**प्राणो वै वायुरपानो नियुत्। वायवे नियुत्वते आलभेत**)। ब्रह्मपुराण 126.18 में भी कवि वायु को प्राण बतलाता है—

भवान् प्राणो वायो सत्यं त्वयि स्थितम्।

और मत्स्य पुराणकार (173.28) ने तारकामय संग्राम में वायु का वर्णन करते हुए कहा है कि ये वायु-देव ही पाँच प्राणों के रूप में सभी प्राणियों के शरीर में विद्यमान रहते हैं और शरीरगत सात धातुओं में व्याप्त रहकर तीनों लोकों को धारण करते हैं-

यः प्राणः सर्वभूतानां पञ्चधा भिद्यते नृषु।
सरसधातुगतो लोकान् त्रीन् दधार चचार च॥

रामायण के उत्तरकाण्ड (35.60, 61) में ब्रह्माजी वायु की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वायु ही जीवों का प्राण ह। उसके बिना शरीर काष्ठ के समान हो जाता है।

अशरीरः शरीरेषु वायुश्चरति पालयन्।
शरीरं हि विना वायुं समतां याति दारुभिः।
वायुः प्राणः सुखं वायुः वायः सर्वमिदं जगत्॥

इन्द्र के साथ वायु के सम्बन्ध के कारण ऋग्वेद में दोनों को एक ही रथ में बैठे हुए वर्णित किया गया है (**इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक्**, 7.91.5)। ये दोनों देवता

1 तिस्र एव देवताः इति नैरुक्ताः, वायुर्वा इन्द्रो वा अन्तरिक्षस्थानाः।निरुक्त 7।5
अग्निरस्मिन् अथेन्द्रस्तु मध्यतो वायुरेव वा। बृहद्देवता 1।65

अपने रथ पर चढ़े हुए आकाश का स्पर्श करते हैं- **स्पृशा इन्द्रवायू हवामहे**, 1.23.2)। वायु के रथ को अनेक अश्व खींचते हैं। ये इच्छानुसार रथ में जुत जाते हैं (**मनोयुजो युक्तासः**, 4.48.4)। विभिन्न स्थानों में इनकी संख्या 99, 100 या 1000 बताई गई है। पृथिवी और आकाश के बीच में व्याप्त होने के कारण वायु को रोदसी या द्यावापृथिवी का भी कहा है (**राये नु यं जज्ञतू रोदसी इमे**, 7.190.13), दो स्थानों पर उन्हें स्वष्टा का जामाता बताया गया है, पर उनकी पत्नी का कहीं उल्लेख नहीं है (**त्वष्टुर्जामातरद्भुत**, 8.26.21)। एक स्थान पर वायु को मरुतों का जनक भी बताया गया है, उनको उसने आकाश की नदियों से उत्पन्न किया (**अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः**, 1.134.4)।

वायु को दर्शनीय या सुन्दर (**दर्शत** 1.2.1) तथा सबसे अधिक सौन्दर्यशाली (**सुप्सरस्तमः**, 8.26.24) भी कहा गया है। गरजते हुए तेजी से आगे बढ़ने के कारण वे **'क्रन्ददिष्टि'** हैं (10.100.12)। इन्द्र के साथ उनकेलिए **'सहस्राक्ष' 'मनोजुवा'** (मन के समान तीव्र चलनेवाले) तथा **'धियस्पती'** (बुद्धिमान्) विशेष प्रयुक्त हुए हैं (1.23. 3)। वायु के भौतिक स्वरूप वात केलिए ऋग्वेद में एक सुन्दर सूक्त (10.168) प्राप्त होता है। वह घनघोर रव करता हुआ तथा गरजता हुआ आता है और आते ही पृथ्वी की धूलि से सभी वस्तुओं को भूरा बना देता है (**रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोषः। दिविस्पृग्याति अरुणानि कृण्वन् उतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन्**)। पृथ्वी की छोटी-मोटी वस्तुएँ उसके पीछे-पीछे उसी प्रकार एकत्र हो जाती हैं जैसे सभा में स्त्रियाँ। अन्तरिक्ष के पथ में विचरण करते हुए वह कभी विश्राम नहीं लेता (**न हि विशते कतमच्चनाहः**)। किसी को यह ज्ञात नहीं है कि वह कहाँ उत्पन्न होता है और कहाँ से आता है (**क्व स्विज्जातः कुत आ बभूव**)। जहाँ इसकी इच्छा होती है वहाँ यह विचरण करता है (**यथावशं चरति देव एषः**) इसका रूप किसी को नहीं दिखाई पड़ता केवल घोष ही सुनाई पड़ता है (**घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपम्**)।

सोम के साथ भी वायु का विशेष सम्बन्ध है। वे सोम के रक्षक हैं (**वायुः सोमस्य रक्षिता**, 10.85.5)। वे शुद्ध सोम का पान करते हैं (**शुचिपा**)। ऋग्वेद के अनेक मन्त्र में वायु को इन्द्र के साथवाला कहा गया है (**पूर्व पेयं हि वां हितम्। येमिरे**, 1.135.1, 4। **त्वं हि पूर्वपा असि**, 4.46. 1। ऐतरेय ब्राह्मण 2.4.1 में इस विषय में एक छोटी-सी कथा का उल्लेख किया गया है जिसमें वायु को सर्वप्रथम सोमभाग देने का कारण वर्णित है-

देवा वै सोमस्य राज्ञो अग्रपेये न समपादयन्, अहं प्रथमः पिबेय- महं प्रथमः पिबेयमित्येव अकामयन्त। ते संपादयन्तो अब्रुवन् हन्त आजिम् अयाम स यो न उज्जेष्यति स प्रथमः सोमस्य पास्यति। तथेति। तेषां वायुर्मुखं प्रथमः प्रत्यपद्यत अथेन्द्रः। स अवेद इन्द्रो वायुमुद् वै जयतीति तमनुप्रापतत् 'तुरीयं मे अथ उज्जयाव' इति। तथेति। तुरीयभाक् इन्द्रो अभवत् त्रिभाक् वायुः तो सह एव इन्द्रवायू उदजयताम्। - ऐ. ब्रा. 2.4.1.

सोम के प्रथम पान केलिए देवों में स्पर्धा हुई। दौड़ से इसका निर्णय करने का निश्चय किया गया। 'मनोजव' वायु ही सबसे आगे रहे। इन्द्र ने वायु से अपना आधा भाग देने केलिए कहा। पर वायु ने केवल चौथाई भाग देना स्वीकार किया। इसीलिए सबसे पहले वायु को सोम के प्रथम भाग के तीन अंश तथा इन्द्र को एक अंश प्रदान किया जाता है। शतपथ ब्राह्मण 13.1.2.7 में वायु को देवों में सर्वाधिक वेगवान् बताया गया है (**वायुर्वै देवानामाशिष्ठः**) और तैत्तिरीय संहिता 2.1.1 में भी कहा गया है- **वायुर्वे क्षेपिष्ठा देवता**। वेग एवं बल केलिए वायु सर्वत्र प्रसिद्ध हैं।

यजुर्वेद में वायु का पाप शोधक रूप भी सामने आता है। बहता हुआ वायु पृथ्वी की दुर्गन्ध को नष्ट करता है, इसीलिए उसे 'पवन' भी कहा गया है। वायु के इसी पावन एवं शोधक रूप को ध्यान में रखकर ही ऋग्वेद 10.186.1 में वात से आयु को बढ़ाने की प्रार्थना की गई है (**प्र ण आयूंषि तारिषत्**)। शुक्ल यजुर्वेद 4.4 में इसी कारण वायु केलिए 'अच्छिद्र' तथा 'पवित्र' विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। वाजसनेय संहिता 20.15 में वायु का

मलशोधक रूप पापशोधक तत्त्व के रूप में परिवर्तित हो गया है और उससे दिन और रात में किये गये सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने की प्रार्थना की गई है—

यदि दिवा यदि नक्तम् एनांसि चक्रमा वयम्।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान् मुञ्चतु अंहसः॥

शतपथब्राह्मणकार ने वाजसनेय संहिता 4.4 में प्रयुक्त अच्छिद्र एवं पवित्र शब्दों के विषय में लिखा है- **यो वा अयं पवते एषो अच्छिद्र पवित्रम्।** इस पर सायण कहते हैं कि सर्वदा सभी वस्तुओं को पवित्र करने के कारण वायु अच्छिद्र एवं पवित्र है (**सर्वदा सर्वत्र पवनात् एष वायुः अच्छिद्रं पवित्रम्**) और शतपथ ब्राह्मण 2.6.3.7 में तो वायु की परिभाषा ही यह बताई गई है, कि जो पवित्र करे वही वायु है— **अयं वं वायुः योऽयं पवते** (तुलना कीजिए- कात्यायन श्रौतसूत्र, 2.102)।

शतपथ ब्राह्मण 4.1.3.7 में एक कथा आती है कि एक बार सोम अत्यधिक अपवित्र हो गया और उससे दुर्गन्ध आने लगी। देवों ने वायु से उस दुर्गन्ध को दूर करके सोम को स्वादिष्ट बनाने केलिए कहा। वायु ने एक वर प्राप्त करके ऐसा ही कर दिया-

स एषामाश्यत्। स एनान् शुक्तः पूतिरभिभवौ। स नालम् आहुत्या आस, नालं भक्षाय। ते देवा वायुमब्रुवन्। वायो, इमं नो विवाहि। इमं नो स्वदयेति। तथेति होवाच यूयं तु मे सच्युपवातेति।

अथर्ववेद 6.5.11 में भी कहा गया है कि सोम वायु की पावनी शक्ति द्वारा पवित्र किया जाता है-

वायोः पूतः पवित्रण प्रत्यङ् सोमो अति द्रतः।

इसी प्रकार अथर्ववेद 6.62.1 में भी वात की पावनकारिणी विशेषता का उल्लेख किया गया है।

अथर्ववेद में वायु का पशुओं से विशेष सम्बन्ध है। वे उन्हें एक स्थान पर एकत्र करते हैं (6.124.1)। उनसे विभिन्न रूपों और वर्णों के ग्राम्य पशुओं को मुक्त करने की प्रार्थना की गई और (पशुओं का रक्षक होने के कारण) उन्हें प्रजापति भी कहा गया है-

ये ग्राम्या पशवो विश्वरूपा विरूपा सन्तो बहुधैकरूपाः।
वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संरराणः॥

-अथर्व वेद 6.34.4

अथर्व वेद 2.26.1 में उन्हें पशुओं का सहचर भी बताया गया है **(एह यन्तु पशवो ये परेयुः वायुर्येषां सहचारं जुजोष)**। वायु का पशुओं से यह सम्बन्ध बिलकुल मौलिक है और अन्यत्र कहीं भी इसका संकेत नहीं मिलता, न पूर्ववर्ती ग्रन्थों में और न परवर्ती।

सर्वत्र विचरणशील तथा शीघ्रगामी होने कारण वायु की देवों के दूत के रूप में धारणा बहुत पहले ही विकसित हो गई थी। शतपथ ब्राह्मण 4.1.1.3 में आई एक लघुकथा में इन्द्र द्वारा वृत्र पर प्रहार किये जाने पर देवता वायु को इसका पता लगाने को भेजते हैं कि वह जीवित है या नहीं, क्योंकि वायु सर्वाधिक तीव्रगामी है। यदि वृत्र जीवित भी होगा तो भी वायु पुनः शीघ्रता से लौटकर आ सकता है-

ते ह देवा ऊचुः। न वै हतं वृत्र विद्म न जीवन्तम्। ते वायुमब्रुवन्। वायो, त्वमिदं विद्धि। यदि हतो वृत्रो जीवति वा। त्वं वै न आशिष्ठो असि। यदि जीविष्यति त्वमेव क्षिप्रं पुनरागमिष्यति इति। तथेत्येयाय वायुरैद्धतं वृत्रम्। स होवाच हतो वृत्रः॥

वायु का यह दौत्य पुराणों में भी सुरक्षित है। महाभारत वनपर्व 19.22-24 में देवता शाल्व का वध करने केलिए उद्यत प्रद्युम्न के पास वायु से उनका शीघ्र वध करने केलिए संदेश भेजते है और मत्स्यपुराण 152.39 में पार्वती की सखी कुसुमामोदिनी शिव के द्वारा आडि के वध का समाचार भी वायु के द्वारा ही पार्वती के पास भिजवाती है—

अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था शैलपुत्र्यै न्यवेदयत्।
दूतेन मारुतेनाशुगामिना नागदेवता।
श्रुत्वा वायुमुखाद् देवी.....।

मध्वाचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित द्वैतमार्ग में वायु की ईश्वर (विष्णु) तथा जीव के बीच संपर्क स्थापित करनेवाले माध्यम के रूप में बड़ी प्रतिष्ठा है। वायु की दूतकर्म केलिए उपयुक्तता उनकी एक अन्य विशेषता से भी प्रतिफलित होती है। शरीरस्थ वायु ही मुख से निःसृत होकर वाणी का प्रादुर्भाव करती है (वायु पुराण, 54.10-17)। फलतः

वायुदेव को अत्यन्त वाग्मी चित्रित किया गया है। वाणी के अधिपति होने के कारण वे भाषण कला में अत्यन्त निपुण हैं। मत्स्य पुराण में जब देवता तारकासुर से हारकर ब्रह्मा के पास पहुंचते हैं तो वायु से सबके प्रतिनिधि के रूप में ब्रह्मा से बात करने केलिए कहते हैं—

वाचां प्रधानभूतत्वात् मारुतं तमचोदयन्।

-मत्स्य. 153.27

और विष्णु आदि देवों के द्वारा आज्ञप्त होते पर वे बोलना प्रारम्भ करते हैं-

इति विष्णुमुखैर्देवैः श्वसनः प्रतिबोधितः।
चतुर्मुखं तदा प्राह चराचरगुरुं विभुम्॥

-मत्स्य0 153.28

वायु का सर्वाधिक सुन्दर तथा चित्रात्मक वर्णन रामायण के उत्तरकाण्ड में प्राप्त होता है। इसके 35 वें सर्ग में वायु के संसर्ग से वानरराज केसरी की अंजना नामक पत्नी में हनुमान नामक अमित बलशाली पुत्र की उत्पत्ति का वर्णन है।[2] राम के परम सेवक और सहायक के रूप में हनुमान् का चरित लोक-प्रसिद्ध है। विशालकाय वृक्षों को भी अपने वेग से धराशायी कर देनेवाले वायु के अधिष्ठाता देवता के पुत्र का अद्वितीय शक्ति एवं बल-संपन्न होना स्वाभाविक ही है। हनुमान् को इसीलिए वज्र के समान दृढ़ तथा गरुड़ के समान वेगवान् बताया गया है-

मारुतस्यात्मजः श्रीमान् हनुमान्नाम वानरः।
वज्रसंहननोपेतो वैनतेयसमो जवे।
सर्ववानरमुख्येषु बुद्धिमान् बलवानपि॥

-बाल0 17।16, 17

वायु अत्यन्त पुत्रवत्सल हैं। बालक हनुमान् की वे हर प्रकार से रक्षा करते हैं। सूर्य की ओर बढ़ते हुए हनुमान् पर जब इन्द्र प्रहार करते हैं, तो वायुदेव क्रुद्ध होकर प्राणियों के शरीर के अन्दर होनेवाली अपनी सततगति को बन्द कर देते हैं। यहाँ वायु का तादात्म्य अनुसार शरीर में स्थित तीन प्रमुख धातुओं में परिगणित 'वात' धातु के साथ कर दिया गया है। वात के संचार के बिना प्राणियों के मलमूत्र आदि अवरुद्ध हो जाते हैं, श्वासोच्छवास बन्द हो जाता है और शरीर की संधियों के टूटने के कारण अंग संचालन भी रुक जाता है-

तस्मिंस्तु पतिते काले वज्रताडनविले।
चुक्रोधेन्द्राय पवनः प्रजानामहिताय सः॥
प्रचारं स तु संगृह्य प्रजास्वन्तर्गतः प्रभु।
विण्मूत्राशयमावृत्य प्रजानां परमार्तिकृत्।
रुरोध सर्वभूतानि यथा वर्षाणि वासवः॥
वायुप्रकोपाद् भूतानि निरुच्छ्वसितानि सर्वशः।
सन्धिभिर्भिद्यमानैश्च काष्ठभूतानि जज्ञिरे।

-उत्तर0 35.48-51

वायु का यह रूप उसके आधिभौतिक रूप से भी अधिक सूक्ष्म है। किन्तु अगले श्लोकों में उनका आधिदैविक रूप फिर उभर आया है। अपने आहत पुत्र को लेकर वे पर्वत की गुफा में चले जाते हैं (गुहां प्रविष्टः स्वसुतं शिशुमादाय मारुतः, वही, 35/41)। उनके शरीर में सुवर्ण के आभूषण हैं और कर्णो में चंचल कुण्डल। गले में वे माला धारण करते हैं। जब ब्रह्मा जी उनकी गुफा में आते हैं तो वे उठकर उनके चरणों में गिर पड़ते हैं-

ततः पितामहं दृष्ट्वा वायुः पुत्रवधादितः।
शिशुकं तं समादाय उत्तस्थौ धातुरग्रतः॥
चलत्कुण्डलमौलिस्रक्तपनीयविभूषणः ।
पादयोर्न्यपतद् वायुः त्रिरुपस्थाय वेधसः॥

-उत्तरकाण्ड 36.1-2

यह वायु का शुद्ध मानव (देव) रूप है। वस्तुतः वायु के दैविक तथा भौतिक रूप कभी एक में नहीं मिल पाये हैं। दोनों का तादात्म्य है अवश्य, पर साथ ही उनका पृथक्-पृथक् उल्लेख भी किया गया है। फिर भी यह

2 यत्र राज्यं प्रशास्त्यस्य केसरी नाम वं पिता। तस्य भार्या बभूवेष्टा अंजनेति परिश्रुता॥जनयामास तस्यां वे वायुरात्मजमुत्तमम् ॥ उत्तर0 35।19, 20

कहना ही होगा कि देवशास्त्र में अन्त तक अग्नि की भाँति वायु के भौतिक तथा दैविक रूपों में विभाजन की रेखा खींचना असंभव-सा है। अग्नि, वायु आदि प्रत्यक्ष तत्त्वों को देव-रूप में हँसते, बोलते तथा युद्ध करते देखकर पाठक की सामान्य बुद्धि में यही प्रभाव पड़ता है कि ये देवता तत्त्वों के पीछे स्फुरित होती हुई किसी अव्यक्त चेतना के प्रतीक हैं जो इन तत्त्वों का नियमन करती है किन्तु जिसका इन तत्त्वों से पार्थक्य नहीं किया जा सकता।

महाभारत, शान्तिपर्व के 156 वें अध्याय में सेमल वृक्ष का एक उपाख्यान आता है जिसमें एक विशाल शाल्मली वृक्ष नारद से अपने को अत्यधिक बलशाली बताता हुआ वायु से भी भयभीत न होने की बात कहता है। नारद वायु के पास जाकर वृक्ष की तिरस्कार भरी बातें सुनाते हैं और तब वायु वृक्ष पर प्रकोप करते हैं (शान्ति0 156.9)। महाभारत आदिपर्व 72.1-4 में इन्द्र विश्वामित्र की तपस्या भंग करने केलिए मेनका को भेजते समय वायु को भी उसके सहायक के रूप में भेजते हैं और वायु अवसर देखकर उसका वस्त्र उड़ा देते हैं। ऐसे सभी उल्लेखों में उनके देवी तथा भौतिक रूप साथ-साथ प्राप्त होते हैं।

महाभारत शान्ति 155.9 में वायु को संसार में सर्वाधिक बलशाली बताया गया है **(न हि वायोर्बलेनास्ति भूतं तुल्यबलं क्वचित्)**। इन्द्र, यम, कुबेर तथा वरुण भी उनके समान शक्तिमान् नहीं हैं **(इन्द्रो यमो वैश्रवणो वरुणश्च जलेश्वरः। नैतेऽपि तुल्या मरुतः,** 155.10)। महाभारत के प्रमुख पांडव, अतुल पराक्रमी, भीमसेन को वायु के अंश से उत्पन्न बताया गया है (आदिपर्व 122. 11-14)। इनमें दस सहस्र हाथियों का बल वर्णित किया गया है (आदिपर्व 128.20)। जन्म के दसवें दिन माता की गोद से छूटकर इनके एक शिला पर गिर जाने से वह शिला ही टुकड़े टुकड़े हो जाती है (आदि. 122.15)। वायु के प्रथम पुत्र हनुमान् का बल और पराक्रम तो रामायण में अनेक स्थानों पर वर्णित है ही, आज भी वे पहलवानों के इष्ट देवता हैं।

रामायण बालकाण्ड 35, 36 सर्ग में वायु के विषय में एक अन्य आख्यान भी प्राप्त होता है, जिसमें उन्हें अत्यधिक स्त्री-प्रिय तथा ईर्ष्यालु चित्रित किया गया है। राजा कुशनाभ की सुन्दरी एवं यौवनशाली कन्याओं को उद्यान में विचरण करते हुए देखकर वायुदेव उनसे अपनी पत्नियाँ बन जाने का प्रस्ताव रखते हैं और बदले में उन्हें दीर्घायु प्रदान करने का वचन देते हैं (प्राणों के स्वामी होने के कारण) -

ताः सर्वगुणसंपन्ना रूपयौवनसंयुताः।
दृष्ट्वा सर्वात्मको वायुरिदं वचनमब्रवीत्॥
अहं वः कामये सर्वा भार्या मम भविष्यथ।
मानुषस्त्यज्यतां भावो दोर्घमायुरवाप्स्यथ॥

-बाल. 32.15, 16

किन्तु कन्यायें ऐसी स्वेच्छाचारिता पसन्द नहीं करतीं। वे कहती हैं- **यस्य नो दास्यति पिता स नो भर्ता भविष्यति** (22)। इस पर वायुदेव क्रुद्ध हो जाते हैं और उनके शरीर में प्रविष्ट होकर, सब अंगों को लुंज-पुंज करके, उन्हें कुबड़ी बना देते हैं-

तासां तद्वचनं श्रुत्वा वायुः परमकोपनः।
प्रविश्य सर्वगात्राणि बभंज भगवान् प्रभुः॥

- बाल0 32.23

किन्तु महाभारत में उन्हें अत्यन्त विद्वान्, धार्मिक तथा जिज्ञासु देवता के रूप चित्रित किया गया है। वे सुपर्ण ऋषि से सात्त्वत धर्म की शिक्षा प्राप्त करते हैं और स्वयं विघसाशी ऋषियों को उसका उपदेश देते हैं (शान्ति, 348.22-24)। कार्तवीर्य अर्जुन से वे ब्राह्मणों की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं (अनुशासन पर्व 152-157 अध्याय)। इसी प्रकार अनुशासन पर्व के 128वें अध्याय में भी उन्हें धर्माधर्म के रहस्य की व्याख्या करते हुए वर्णित किया गया है। शिव की महत्ता का प्रतिपादन करनेवाले प्रसिद्ध 'वायु पुराण' के भी वे ही वक्ता हैं जिसको उन्होंने नैमिषारण्य में यज्ञ करनेवाले ऋषियों से वर्णित किया था (वायु पुराण 2-37, 45)।

वायु पुराण 2.38-45 में वायु के स्वरूप का वर्णन करते हुए

शेष 54 पर

वायुदेव एवं वायुपुत्र हनुमानजी

श्री महेश प्रसाद पाठक
"गार्ग्यपुरम्" श्रीसाईं मन्दिर के पास, बरगण्डा,
पो– जिला–गिरिडीह, (815301), झारखण्ड,
Email: pathakmahesh098@gmail.com

गोस्वामी तुलसीदासजी ने हनुमानचालीसा में लिखा है- "संकर सुवन केसरी नंदन" अर्थात् हनुमानजी भगवान् शंकर के पुत्र के रूप में अवतरित हुए थे। उन्हें रुद्रावतार माना जाता है। इस आधार पर "संकर स्वयं केसरीनंदन" पाठ भी लोग सुझाते हैं। वास्तव में दोनों पाठ शुद्ध हैं। भगवान् शिव की आठ मूर्तियों-स्वरूपों में उनकी एक मूर्ति वायु रूप में भी है, जिस रूप में वे उग्र कहलाते हैं। इस स्थिति में वायुदेव तथा महादेव अभिन्न हो जाते हैं। यहीं कारण है कि वायु-पुराण भी शैव-पुराण है तथा वैष्णव परम्परा में उसे महापुराणों में सम्मिलित किया जाता है, जबकि शाक्त परम्परा वायुपुराण को महापुराण न मानकर शिवपुराण को यह स्थान देती है। अतः वायु तथा शिव में अभेद स्थापित होता है। ऋग्वेद के मरुत सूक्तों में भी रुद्रासः शब्द के प्रयोग से इसका संकेत मिलता है। दूसरी ओर रुद्र केलिए प्रयुक्त गोघ्न) तथा पुरुषघ्नः उपाधियाँ आँधी तथा तडित् से सम्बद्ध है। से लेकर पुराणों तक वायुदेवता के स्वरूप में जो विकास हुआ है, उसका एकत्र विवेचन इस आलेख में किया गया है साथ ही रामदूत हनुमान् का भी इससे सम्बन्ध जोड़ा गया है।

पञ्चभूतों में से एक एवं वैदिक देवताओं में वायु प्रधान स्थान रखते हैं। वायु स्वयं को अदृश्य स्थिति में प्रस्तुत करते हैं, किन्हीं ने इनके स्वरूप को नहीं देखा, लेकिन इनकी उपस्थिति का आभास किया जा सकता है। इसलिए मात्र अनुमान के आधार पर लोग इनका मूर्तिकरण भी कर डालते हैं। यह विदित है कि हमारे वैदिक ऋषियों की रचनाएँ मात्र अध्यात्मिक ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक शोधों से भी आपूरित हुआ करती थी। वायु के कार्य, गुण, उत्पत्ति आदि का पता लगाना एक कुशल वैज्ञानिक ही कर सकते हैं। वायु ही समस्त विश्व का कारण, जीवों के प्राण हैं। वायु और वात दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं एवं एक ही भौतिकतत्त्व एवं देवीयतत्त्व के बोधक भी हैं। वायु से एक 'देवता विशेष' का एवं वात को 'आँधी' से जोड़ा जाता है। वायु में 'वा' (बहना) को धातु से सम्बद्ध किया गया है। वात पृथ्वी पर धूल उड़ाता हुआ, सभी वस्तुओं को छिन्न-भिन्न करता हुआ अपने पथ पर परिभ्रमण करता है। आयुर्वेद ग्रन्थों में साधारणतः इसे त्रिदोषों में से एक -से भी जोड़ा जाता है। 'वात' की प्रसिद्धि में ऋग्वेद[1] में मात्र दो सूक्त ही मिलते हैं। पुरुष-सूक्त में वायु को विश्वपुरुष का निःश्वास कहा गया है- **"प्राणाद्वायुरजायत।"**[2] इसी सन्दर्भ की चर्चा महाभारत में भी मिलती है।

1 ऋग्वेद : 10.168 एवं 186
2 ऋग्वेद : 10.90.13-

विष्णोर्निःश्वासवातोऽयं यदा वेगसमीरितः।
सहसोदीर्यते तात जगत् प्रव्यथते तदा॥
तस्माद् ब्रह्मविदो वेदान् नाधीयन्तेऽतिवायती।
वायोर्वायुभयं ह्युक्तं ब्रह्म तत्पीडितं भवेत्॥[3]

एक विशेष बात यह है कि जब प्रचण्ड वायु (आँधी) चलती है तब ब्रह्मवेता वेदपाठ नहीं किया करते। वेद भी भगवान् का ही निःश्वास है, इसलिए उस समय वेदपाठ करने से वायु को वायु से भय प्राप्त होता है और वेद को भी पीड़ा होती है। वेदों के अनुसार 'वायु' यश, सन्तान, अश्वों के रूप में सम्पत्ति, वृषभ एवं सुवर्ण प्रदान करते हैं,[4] ये अवांछित पशुओं को भगाते हैं,[5] निर्बलों की रक्षा हेतु आवाहित है।[6] एक स्थान पर इन्हें इन्द्र के साथ भी जोड़ा गया है, अतः ये इन्द्र-वायु (युगल देव) के साथ आवाहित हैं। विद्युत् और वर्षाकालीन गर्जन और तूफान में ये एक साथ ही होते हैं। इन्द्र और वायु एक साथ ही संयुक्तरूप से एक ही रथ में बैठते हैं।[7] इनके बैठने का आसन सुवर्णमय है तथा यह आकाश का स्पर्श करता रहता है।[8]वायु के सन्दर्भ में कथा भी आती है- सोम-भाग प्राप्त करने में देवताओं की दौड़ में वायु 'अभीष्ट' स्थान पर सर्वप्रथम आये, इसके बाद इन्द्र का स्थान आया।[9] ऋग्वेद में इन्हें सोम का रक्षक भी कहा गया है।[10]

वायुपुत्र हनुमान्

सन्दर्भानुसार अब वायुपुत्र हनुमानजी का वर्णन अपेक्षित है- ज्ञानिनामग्रगण्य, रघुपतिप्रियभक्त हनुमानजी को 'मारुतिनन्दन' कहा गया है। इनके वेग के बारे में कहा जाता है- 'मनोजवं मारुततुल्यवेगं'- ये मन के समान शीघ्रगति से गमन करनेवाले एवं वायु के समान प्रवलवेग से भूषित हैं। मरुत् कहते हैं- वायु के देवता को।[11]

अमरकोश[12] के अनुसार मरुत् के अन्य अर्थ भी मिलते हैं- श्वसन, स्पर्शन, वायु, मातरिश्वा, सदागति, पृषदश्व, गन्धवह, गन्धवाह, अनिल, आशुग, समीर, मारुत, मरुत्, जगत्प्राण, समीरण, नभस्वान्, वात, पवन, पवमान् एवं प्रभञ्जन।

श्वसनः स्पर्शनो वायुर्मातरिश्वा सदागतिः।
पृषदश्वो गन्धवहो गन्धवाहानिलाशुगाः।
समीर-मारुत-मरुज-जगत्प्राण समीरणाः।
नभस्वद्-वात-पवन-पवमान्-प्रभञ्जनाः॥

संस्कृत हिन्दी कोश[13] वायुः में- जातः, तनयः, नन्दनः, पुत्रः, सुतः, सुनुः के साथ संयुक्त होने से यह हनुमानजी या भीम का विशेषण बन जाता है।

वायुपुत्र हनुमानजी के चरित, उद्योग, शक्ति, बुद्धि का वर्णन करने में कौन सक्षम है ! इनके महत्व की चर्चा जाम्बवानजी अपने मुख से करते हुए कहते हैं- पवनपुत्र हनुमान् ने जो कार्य किया है,उसका हजार मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता।

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी।
सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥[14]

3 महाभारत : शान्तिपर्व, 328.36-52
4 ऋग्वेद : 7.90.2-6, विशेष द्रष्टव्य- ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः। इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः॥6॥
5 ऋग्वेद : 4.48.2- निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः। वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये॥2॥
6 ऋग्वेद : 1.134.5 त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा॥
7 ऋग्वेद : 4.46.2, 48.2 8 ऋग्वेद : 4.46.4 9 ऐतरेयब्राह्मण : 2.25
10 ऋग्वेद : 10.85.5 11 भारवि : किरातार्जुनीयम्- 2.25; कालिदास : रघुवंशम्, 3.14
12 अमरसिंह : अमरकोश, 1.1.61.62 13 वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत हिन्दी कोश, पृष्ठ-918
14 तुलसीदास : रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, 30.3

'पवनतनय' नाम के पीछे एक अप्सरा 'पुञ्जिकस्थला' का नाम आता है, जो ऋषि के शाप से एक वानरी होकर[15] पृथ्वी पर कपिश्रेष्ठ केसरी की भार्या 'अञ्जना' के नाम से विख्यात हुई। एक समय ये दोनों (केसरी और अञ्जना) पर्वतश्रेष्ठ सुमेरु पर विहार कर रहे थे, तभी वायुदेव अञ्जना के रूप पर मोहित होकर अञ्जना को मनसा स्पर्श[16] करते हुए चले गये। साध्वी अञ्जना को भी लगा कोई ऐसी शक्ति है जो मुझे स्पर्श करती हुई चली गयी। तो इन्होंने जोरों से कहा-वह कौन दुरात्मा है, जो मेरा पातिव्रत्यत-धर्म नष्ट करने को आतुर है! देवी अञ्जना की बातें सुनकर पवनदेव ने कहा- देवी! आप निःसंदेह पवित्र हैं और अपना मानसिक संदेह दूर करें, क्योंकि मैंने मात्र मानसिक संस्पर्श ही किया है, जिससे आपको एक पुत्र होगा, जो बल-बुद्धि और पराक्रम में अद्वितीय एवं भगवद्भक्त होगा। इसप्रकार भगवान् शंकर के अंशरूप ही वायुदेव का माध्यम से माताअञ्जना के गर्भ से वायुपुत्र हनुमानजी अवतरित हुए।

पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा का वर्णन शतपथ ब्राह्मण[17] आता है- जिसके अनुसार 'पुञ्जिकस्थला' का अर्थ- दिशा या अग्नि की सेना है। 'दिशा' अनन्तता के प्रतीक के साथ-साथ 'दिशा' शब्द अग्नि का भी वाचक है- **'दिशोऽग्निः।'** शतपथ ब्राह्मण[18] में वायु अग्नि का सखा है। दिशाओं के देवता वायु हैं, वह सबमें आविष्ट हैं। वायु में सबको मिलाने की शक्ति है। तभी तो इन्होंने सुग्रीव से अपने आराध्य श्रीराम को मिलवाया। वायुदेव देवों के दूत भी कहे गये हैं, इसलिए हनुमानजी का श्रीराम का दौत्यकर्म करना सुसंगत भी जान पड़ता है।

राम काज लगि तव अवतार।[19]

शतपथ ब्राह्मण में वायु अग्नि का सखा है। दिशाओं के देवता वायु हैं, वह सबमें आविष्ट हैं। वायु में सबको मिलाने की शक्ति है। तभी तो इन्होंने सुग्रीव से अपने आराध्य श्रीराम को मिलवाया। वायुदेव देवों के दूत भी कहे गये हैं, इसलिए हनुमानजी का श्रीराम का दौत्यकर्म करना सुसंगत भी जान पड़ता है।

इसप्रकार, पवनपुत्र में वायु की शक्ति एवं अग्नि का तेज संयुक्तरूप से रहने के कारण ये श्रेष्ठबुद्धि, अमितबल, अद्भुतपराक्रम, महातेजस्वी, जितेन्द्रिय, दुष्टों केलिए संहारकशक्ति से सम्पन्न आदि जैसे अनेक विशिष्ट गुणों के धारक हैं।

हाथों में पञ्चतत्त्व

योगदर्शन के अनुसार अन्तरङ्ग योग में धारणा, ध्यान और समाधि का निरूपण मिलता है। इन तीनों का संयुक्त नाम संयम है- जो विभूतिपाद (4) में वर्णित है- **'त्रयमेकत्र संयमः।'** इसी अध्याय के चौबीसवें सूत्र में कहा गया है- **'बलेषु हस्तिबलादीनि।'**[20] बलेषु = बलों में (संयम करने से); हस्ति-बल-आदीनि= हाथी आदि के समान बल प्राप्त होते हैं। इसकी व्याख्या में कहा गया है- जब योगी हाथी, सिंह आदि बल और वायु आदि के वेग से तदाकार होकर साक्षात्-पर्यंत संयम करता है, तब वह उन बलों को प्राप्त होता है अर्थात् जिसके बल में संयम किया जाता है वही बल प्राप्त होता है। हनुमानजी अष्टसिद्धियों एवं नवनिधियों

15 वाल्मीकीय-रामायण : 4.66.8-9
16 वाल्मीकीय-रामायण : 4.66.17-18
17 शतपथब्राह्मण : 8.6.1.16
18 शतपथब्राह्मण : 6.2.2.34
19 तुलसीदास : रामचरितमानस, 4.29.3
20 पतंजलि : योगसूत्र, विभूतिपाद, 24.

के धारक भी हैं जिसकी प्राप्ति योग से ही सम्भव है- अष्टसिद्धि नवनिधि के दाता, पवनकुमार असीमित, अप्रमेय बल के धारक हैं। इस प्रसंग में हनुमानजी के बल-शौर्य के बीच इनकी मुष्टिका का वर्णन भी अपेक्षित है। हाथों की पाँच अंगुलियाँ में पञ्चभूत अथवा पञ्चज्ञानेन्द्रिय का वास कहा गया है। सभी अँगुलियों को कसकर मोड़ देने या बाँध देने पर यह मुष्टिका बन जाती है। अंगुष्ठ में अग्नितत्त्व, मध्यमा में आकाशतत्त्व, तर्जनी में वायुतत्त्व, अनामिका में जलतत्त्व एवं कनिष्ठ में पृथ्वीतत्त्व की उपस्थिति कही गयी है और जब ये पाँचों तत्त्व एकत्व होकर यानि जमा होते हैं, तब इन्हें मुष्टिका कहा जाता है, क्योंकि इनमें शक्ति का एकत्रीकरण जो हो जाता है! हनुमानजी के मुष्टिका प्रहार से लङ्किनी रूधिर का वमन करने लगी-

मुठिका एक महा कपि हनी।
रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥[21]

मेघनाद को मूर्च्छा आ गयी-

मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई।
ताहि एक छन मुरछा आई॥[22]

हनुमानजी का घूँसा खाकर कुम्भकर्ण व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा-

तब मारुतसुत मुठिका हन्यो।
परयो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥[23]

रावण हनुमानजी का घूँसा खाकर पृथ्वी पर ऐसा गिर पड़ा, जैसे वज्र की मार से पर्वत गिर पड़ा हो

(मुठिका एक ताहि कपि मारा।
परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥[24]

हनुमानजी केलिए इनकी मुष्टिका भी किसी शस्त्र से कम नहीं।

वायुपुत्र के वाहन

जिनका वेग मनःसदृश हो, उनका वाहन कौन बन सकता है? वायुपुत्र तो ये स्वयं ही हैं। पवनपुत्र के वेग से बढ़कर और किनका इनके समान वेग हो सकता है, अगर किसी में ऐसा सामर्थ्य भी हो, तो वे स्वयं पवनदेव ही हो सकते हैं। जब शेषावतार लक्ष्मणजी को शक्ति लगी थी,तब मूर्छित लक्ष्मणजी को सामर्थ्यवान हनुमानजी सम्मानपूर्वक उठाकर श्रीराम के सन्मुख ले आये थे। जो जगदाधार हो, सम्पूर्ण पृथ्वी का भार वहन करने में सक्षम हों, उन्हें बिना किसी परिश्रम के ही वायुपुत्र हनुमानजी ने उठा लिया था-

जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ।[25]

श्रीराम एवं लक्ष्मणजी को इन्होंने अपने कंधे पर बिठाकर सुग्रीव से मिलवाने लाया था-

लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई।[26]

स्कन्द-पुराण, चतुरशीतिलिंगमाहात्म्य, 79/34 में इन्हें 'पवनेन गतिर्द्रुता' कहा है। हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र (72) में इन्हें 'वायुवाहन' कहा गया है, तथापि इनके वेग के समान वायु, गरुड़ एवं मन की गति भी फीकी है।

वेदान्तसूत्र में आचार्यशंकर के भाष्यों में' **एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः।**'[27] अर्थात् आकाश की उत्पत्ति सिद्ध करनेवाले कथन से ही वायु का उत्पन्न होना (मातरिश्वा) बताया गया है। मातरिश्वा अपने उत्पत्तिस्थान अन्तरिक्ष में साँस लेने, शब्द करने तथा विशेषरूप से विचरण करने के कारण इनके नाम में अन्वर्थकता है। वायु का पर्याय कोश के अनुसार मातरिश्वा भी कहा गया है।

21 तुलसीदास : रामचरितमानस, 5.3.2.
22 तुलसीदास : रामचरितमानस, 5.18.4),
23 तुलसीदास : रामचरितमानस, 6.64.4),
24 तुलसीदास : रामचरितमानस, 6.83.1
25 तुलसीदास : रामचरितमानस 6.54
26 तुलसीदास : रामचरितमानस 4.3.2-3)।
27 वेदान्त दर्शन : 2.3.8

मरुद्गण

वैदिक-साहित्य के अनेक संदर्भो में वायु एवं मरुद्गणों के भाव समान रूप से व्यक्त दिखते हैं। मरुद्गणों के बारे में कहा गया है, जैसे- यह वृक्षों का विदीर्ण करने एवं वनों का भक्षण करते हैं,[28] यह प्रचण्ड वायु के समान वेगवान्,[29] धूल उड़ानेवाले,[30] वायु के समान ध्वनि उत्पन्न करनेवाले,[31] जब मरुद्गण वायु सहित वेग से चलते हैं, तब कुहरे को बिखेरते हैं।[32] मरुद्गणों केलिए यही कहा जा सकता है कि ये विद्युत्, आकाशीय-गर्जन, वायु और वर्षा जैसी प्रवृतियों से साथ सम्बद्ध होने के कारण इन्हें झंझावात के देवता रूप प्रसिद्धि है। इसप्रकार कमोवेशी ये वायु का ही प्रतिनिधित्व करते देखे जाते हैं। मरुद्गणों की उत्पत्ति इन्द्र से भी सम्बन्ध रखती है। सोई हुई गर्भवती दिति देवी के उदर में प्रवेश करके इन्द्र ने गर्भ के सात भाग किये, पुनः प्रत्येक भाग के सात-सात खण्ड किये,जिससे मरुद्गणों की संख्या 49 हुई। संक्षिप्ततः इसीप्रकार से 49 मरुद्गणों की उत्पत्ति कही गयी है।[33] दितिपुत्र मरुत्-गणों की संख्या उनचास है, इनके नाम इस प्रकार से हैं –

1. सत्त्वज्योति	2. आदित्य	3. सत्यज्योति
4. तिर्यग्ज्योति	5. सज्ज्योति	6. ज्योतिष्मान्
7. हरित	8. ऋतजित्	9. सत्यजित्
10. सुषेण	11. सेनजित्	12. सत्यमित्र
13. अभिमित्र	14. हरिमित्र	15. कृत
16. सत्य	17. ध्रुव	18. धर्ता
19. विधर्ता	20. विधार्य	21. ध्वान्त
22. धुनि	23. उग्र	24. भीम
25. अभियु	26. साक्षिप	27. ईदृक्
28. अन्यादृक्	29. यादृक्	30. प्रतिकृत्
31. ऋक्	32. समिति	33. संरम्भ
34. ईदृक्ष	35. पुरुष	36. अन्यादृक्ष
37. चेतस	38. समिता	39. समिदृक्ष
40. प्रतिदृक्ष	41. मरुति	42. सरत
43. देव	44. दिश	45. यजुः
46. अनुदृक्	47. साम	48. मानुष
49. विश्।[34]	मूल उद्धरण अगले पृष्ठ पर	

28 ऋग्वेद : 1.39.5
29 ऋग्वेद : 10.78.3
30 ऋग्वेद : 1.64.12
31 ऋग्वेद : 7.56.3
32 ऋग्वेद : 8.7.4
33 महाभारत : उद्योग पर्व-110.8
34 वायुपुराण : उत्तरार्द्ध, 6.123-130

सत्त्वज्योतिस्तथादित्यः सत्यज्योतिस्तथाऽपरः।
तिर्यग्ज्योतिश्च सज्योतिर्ज्ज्योतिष्मानपरस्तथा॥
प्रथमस्तु गणः प्रोक्तो द्वितीयं मे निबोधत।
ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेणः सेनजित्तथा॥
सत्यमित्रोऽभिमित्रश्च हरिमित्रस्तथाऽपरः।
गण एष द्वितीयस्तु तृतीयं मे निबोधत॥
ऋतः सत्यो ध्रुवो धर्त्ता विधर्ताथ विधारयः।
ध्वान्तश्चैव धुनिश्चैव ह्युग्रो भीमस्तथैव च।
अभियुः सक्षिपश्चैवमाह्वयश्च गणः स्मृतः॥
ईदृक् चैव तथान्यादृक् यादृक् च प्रतिकृत्तथा।
ऋक्तथा समितिश्चैव संरम्भश्च तथा गणः॥
ईदृक् च पुरुषश्चैव अन्यादृक्षाच्च चेतसः।
समितासमितदृक्षाच्च प्रतिदृक्षाच्च वै गणाः॥
(*मरुतिद्रसतश्चैव तथा देवोदिशोपरः।
यदुश्चैवानुदृक्सामस्तथोन्यो मानुषी विशः॥
दैत्याः देवाः समाख्याताः सप्तैते सप्तकाः गणाः॥
एते ह्येकोनपञ्चाशन्मरुतो नामतः स्मृताः।)

[वायुपुराण, अध्याय 68, श्लोक 123-129, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलिः, पुणे, 1983ई., पृ. 250]

अन्य पुराणों में इनके नामों में अन्तर भी देखने को मिलते हैं, सम्भवतः ये अन्तर कल्पभेद के कारण हों। भगवान् ने इन्हें अपना स्वरुप कहा है- 'मरीचिर्मरुतामस्मि'।[35] उपर्युक्त नामों में मरीचि का नाम नहीं है, अतः 'मरीचि' को मरुत् न मानकर समस्त मरुद्गणों का तेज समझना चाहिये। सभी मरुद्गण एक दूसरे के भ्राता हैं, जिनमें न कोई ज्येष्ठ हैं और न कोई कनिष्ठ,[36] ये सभी एक साथ ही विकसित हुए हैं,[37] क्योंकि ये सभी अवस्था में समान हैं।[38]

इसी सन्दर्भ में बाल-हनुमान की कथा को स्मरण करने से यह बातें आती हैं कि जब इन्द्र ने बालक हनुमान पर अपने वज्र से प्रहार किया था, तब इनकी ठुड्डी पर चोट लगी और ये अचेत से होकर गिर पड़े थे। अपने पुत्र की यह दशा देखकर सामर्थ्यवान मारुत कुपित हो गये तथा इन्होंने अपनी गति समेट ली, जिससे सम्पूर्ण भूतों में प्राणों-संचार अवरुद्ध हो गया, लोग चेतना-शून्य हो गये। यह देखकर सभी देवता ब्रह्माजी के पास आकर कहा-

वायु प्राणः सुखं वायुर्वायु सर्वमिदं जगत्।
वायुना सम्परित्यक्तं न सुखं विन्दते जगत्॥[39]

वायु से पीड़ित होकर हमसभी आपकी शरण में आये हैं, आप हमारी इस वायुरोधजनित दुःख को दूर करे। क्योंकि वायु ही प्राण है, वायु ही सुख है, वायु ही सम्पूर्ण जगत् है, वायु से परित्यक्त होकर जगत् कभी सुख नहीं पा सकता। तत्पश्चात् सभी देवताओं की कृपा एवं शक्तिपात से हनुमानजी स्वस्थ हुए।

इसीक्रम में वायुतत्त्व के अधिष्ठाता सूर्यदेव ने अपने तेज का सौवाँ अंश मारुतिनन्दन को प्रदान किया।

मार्तण्डस्त्वब्रवीत् तत्र भगवांस्तिमिरापहः।
तेजसोऽस्य मदीयस्व ददामि शतिकां कलाम्॥[40]

जब लंका में लंकेश की आज्ञा से हनुमानजी के पूँछ में आग लगा दी गयी थी तब इन्होनें विभीषण के घर को छोड़कर समस्त लंका को जला डाला था। उस समय भगवान् की प्रेरणा से उनचासों पवन चलने लगे।

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले पवन उनचास।[41]

35 गीता : 10.21
36 ऋग्वेद : 5.59.6
37 ऋग्वेद : 5.56.5
38 ऋग्वेद : 1.165.1
39 वाल्मीकीय-रामायण उत्तर-35.61-62
40 वाल्मीकीय-रामायण उत्तर-36.13
41 तुलसीदास : रामचरितमानस, सु., दोहा25)।

"आकाश में जब विकार होता है, तब उससे पवित्र और सम्पूर्ण गन्धों को वहन करनेवाली बलवान् वायुतत्त्व का आविर्भाव होता है। फिर वायुतत्त्व में जब विकार होता है तब प्रकाशपूर्ण अग्नितत्त्व प्रकट होता है।"

पञ्चमहाभूत

लोक में ये पञ्चधातु- आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ही 'पञ्च महाभूत' कहलाते हैं, जिन्हें ब्रह्माजी ने सृष्टि के आरम्भ में रचा था।[42] सृष्टि के उत्पत्तिक्रम में कहा गया है- ब्रह्माजी त्रिगुणात्मिका प्रकृति द्वारा सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं। सबसे पहले 'महत्-तत्त्व' प्रकट होता है, जिससे स्थूलसृष्टि का आधारभूत 'मन' उत्पन्न होता है। इसी मन से आकाश की उत्पत्ति होती है। आकाश में जब विकार होता है, तब उससे पवित्र और सम्पूर्ण गन्धों को वहन करनेवाली बलवान् वायुतत्त्व का आविर्भाव होता है। फिर वायुतत्त्व में जब विकार होता है तब प्रकाशपूर्ण अग्नितत्त्व प्रकट होता है। फिर अग्नितत्त्व में विकार आने पर जलतत्त्व की उत्पत्ति होती है। जल से ही गन्ध वहन करनेवाली पृथ्वी का प्रादुर्भाव होता है।

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाश सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथ्वी।[43]

आकाशाद्वायुः- आकाश के द्वारा वायु की उत्पत्ति हुई है- इस कथन पर आचार्य शंकर का कहना है कि जैसे अग्नि, जल या अन्य अभिव्यक्त पदार्थ तिरोहित अथवा स्थानान्तरित होते देखे जाते हैं, वैसे वायु में तिरोहित्व नहीं दीखता। यह वायु सम्पूर्ण जगत् एवं समस्त प्राणियों के अन्दर और बाहर अनुस्यूत है, इसी आधार पर मरुद्गणों या मातरिश्वा को जगत्प्राण कहा गया है। इसके अभाव में कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। जिसप्रकार आकाश से उत्पन्न होनेवाला वायु सर्वत्र विचरण करता हुआ सदा आकाश में ही स्थित रहता है, वैसे ही मेरे संकल्प द्वारा उत्पन्न होने से सम्पूर्ण भूत मुझमे स्थित है- ऐसा ही जानना चाहिये।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥[44]

भगवान् की इस उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि सभी तत्त्व के मूल कारण परमात्मा ही हैं।

पञ्चभूतों में- वायु के कार्य एवं गुण

पञ्चभूतों में वायु आदि के प्रमुख कार्य एवं गुण इस प्रकार कहे गये हैं-

1. आकाश के कार्य- शब्द गुण, श्रोत्र इन्द्रिय और शरीर के सम्पूर्ण छिद्र।
2. वायु के कार्य- स्पर्श, चेष्टा और त्वगिन्द्रिय से ग्राह्य।
3. अग्नि (तेज) के कार्य- रूप, नेत्र और परिपाक।
4. जल के कार्य- रस, जिह्वा और क्लेद (गीलापन) और
5. पृथ्वी (भूमि) के कार्य- गन्ध।

पञ्च-स्थूल महाभूत, दस इन्द्रियाँ और मन- इन सोलह तत्त्वों से शरीर का निर्माण हुआ है।[45] प्रलय काल में इसके उल्टे क्रम से सभी एक दूसरे में विलीन होते जाते हैं।

42 महाभारत : शान्तिपर्व, 184.3
43 तैत्तिरीय उपनिषद् : ब्रह्मानन्दवल्ली-.2
44 गीता : 9.6.
45 महाभारत : शान्तिपर्व, 232.12

वायु के गुण

वायोरनियमस्पर्शो वादस्थानं स्वतन्त्रता।
बलं शैघ्र्यं च मोक्षं च कर्म चेष्टाऽऽत्मता भवः॥[46]

अनियत स्पर्श, वाक्-इन्द्रिय की स्थिति, चलने-फिरने आदि में स्वतन्त्रता, बल, शीघ्रगामिता, मल-मूत्र आदि को शरीर से बाहर निकालना, उत्क्षेपण आदि कर्म, क्रिया-शक्ति, प्राण और जन्म-मृत्यु- ये वायु के दस गुण बतलाये गये हैं। तात्पर्य है कि वायु में शब्द और स्पर्श की प्रधानता रहती है।[47]

वायु के बहने के सात मार्ग

ये सात वायु (मरुद्गण) दिति के अद्भुत पुत्र हैं, इनकी सर्वत्र गति है, ये निरन्तर बहते हुए सबको धारण करते हैं।

एवमेते दितेः पुत्राः मारुताः परमाद्भुताः।
अनारतः ते संवान्ति सर्वगाः सर्वधारिणः॥[48]

पृथ्वी पर या आकाश में जहाँ भी हवा चलती है, उसके बहने केलिए सात मार्ग है, जो क्रमशः इसप्रकार हैं-

(1) **प्रवह-** जो धूम और गर्मी से उत्पन्न बादलों और ओलों को इधर से उधर ले जाता है, इस प्रथम मार्ग में प्रवाहित होनेवाले वायु का नाम ही 'प्रवह' है,

(2) **आवह-** जो आकाश में रस की मात्राओं और बिजली आदि की उत्पत्ति केलिए प्रकट होता है, वह महान् तेज से सम्पन्न द्वितीय वायु को 'आवह' कहा गया है,

(3) **उद्वह-** जो सदा सोम, सूर्य आदि ग्रहों का उदय एवं उद्भव करता है, उसे मनीषी पुरुष 'उदान' कहते हैं, जो चारों समुद्र से जल को ऊपर उठाकर जीमूत नामक मेघों में स्थापित करता है तथा जीमूत नामक मेघों को जल से संयुक्त करके उन्हें पर्जन्य के साथ कर देता है, उसे ही इस तृतीय मार्ग पर चलनेवाला वायु उद्वह कहा गया है,

(4) **संवह-** जिसके द्वारा यत्र-तत्र ले जाये गये अनेकों प्रकार के महामेघ घटा बाँधकर जल बरसाना आरम्भ करते हैं और घटा के रूप में घनीभूत होकर जिसकी प्रेरणा से सारे बादल फट जाते हैं, फिर वे वेणुनाद के समान शब्द करने के कारण 'नद' कहलाते हैं तथा प्राणियों के रक्षार्थ पुनः जल का संग्रहण करके घनीभूत हो जाते हैं, जो वायु देवताओं के आकाशमार्ग से जानेवाले विमानों को स्वयं वहन करते हैं, वह पर्वतों के मान को मर्दन करनेवाले चतुर्थ वायु 'संवह' नाम से प्रसिद्ध हैं,

(5) **विवह-** जो वेगपूर्वक महान् शब्द के साथ बहकर बड़े-बड़े वृक्षों को तोड़ या उखाड़ देता है, उसे प्रलयकालीन मेघ 'बलाहक' कहते हैं। जिस वायु का संचरण भयानक उत्पात लानेवाला हो तथा जो आकाश से अपने साथ मेघों की घटायें लिए चलता हो, उस अत्यन्त वेगशाली पंचम वायु 'विवह' कहा गया है।

(6) **परिवह-** जिस वायु के आधार में आकाश में दिव्यजल ऊपर ही ऊपर प्रवाहित होते हैं, जो आकाशगंगा के पवित्र जल को धारण करके स्थित हैं और जिनके द्वारा दूर से ही प्रतिहत होकर सहस्र किरणों के उत्पत्ति स्थान सूर्यदेव एक ही किरणों से युक्त जान पड़ते हैं तथा जिनकी अमृतमयी चन्द्रमा का पोषण होता है, वह विजयशीलों में श्रेष्ठ छठा

46 महाभारत : शान्तिपर्व, 255.6
47 महाभारत : भीष्मपर्व, 5.6
48 महाभारत : शान्तिपर्व, 328.53

वायुतत्त्व 'परिवह' नाम से जाना जाता है, एवं

(7) **परावह-** जो वायु अन्तकाल में सभी प्राणियों के प्राणों को निकालता है, जिसके इस प्राण निष्कासनरूप मार्ग का मृत्यु तथा वैवस्वतयम अनुगमन किया करते हैं, उस सप्तम सर्वश्रेष्ठ वायु का नाम 'परावह' है। यहाँ प्राणी केवल जाता है वापस नहीं लौटता। इसका अतिक्रमण करना सर्वथा कठिन है।

पञ्चप्राण

(1) **प्राणवायु-** मूर्धा में प्राण की स्थिति रहती है। सदा सन्नद रहनेवाला श्वासरूप प्राण ही सम्पूर्ण भूतों की आत्मा सनातन पुरुष है। वही मन, बुद्धि, अहंकार पञ्चभूत और विषयरूप है। (2) अपानवायु -वास्ति के मूलभाग, गुदा और अग्नि के आश्रित हो अपानवायु सदा मल-मूत्र का वहन करती हुई अपने कार्यों में प्रवृत्त होती है।

(3) **उदानवायु-** जो वायु समस्त धातुओं को ऊपर उठती हुई अपान से ऊपर की ओर प्रवृत्त होती है, उसे अध्यात्मकुशल ज्ञानी 'उदान' मानते हैं।

(4) **व्यानवायु-** जो वायु मनुष्यों के शरीरों की एक-एक सन्धि में व्याप्त होकर उनकी सम्पूर्ण चेष्टाओं में प्रवृत्तक होती है, उसे व्यान कहते हैं।

(5) **समानवायु-** जो धातुओं और अग्नि में भी व्याप्त है, वह अग्निस्वरुप 'समान' वायु है। वही अन्तकाल में समस्त चेष्टाओं का निवर्त्तक होता है।[49]

माध्व सम्प्रदाय के द्वैतमत के अनुसार वायुदेव के तीन अवतारों की मान्यता है, जो भगवान् के साहाय्य एवं सेवाकार्य हेतु अवतरित हुए हैं- श्रीरामकार्य हेतु हनुमानजी, श्रीकृष्ण के साथ महाबली भीम एवं मध्वाचार्य के रूप में वेदव्यास की सेवा की।

पुराण की शृंखलाओं में से एक 'वायुपुराण' भी है, जो 112 अध्यायों एवं चार पादों से युक्त तथा 10,991 (11,000) श्लोकों की संख्या से आपूरित है।

मात्र वायु का ही भक्षण कर तपरत संन्यासी का भी वर्णन मिलता है-जिन्हें 'वायव्य' कहा गया है।50

उत्तर एवं पश्चिम दिशा जहाँ ये मिलते हैं, उस कोण को 'वायव्य-कोण' कहा जाता है। इस दिशा के देवता वायुदेव है, इस दिशा में वायुतत्त्व की प्रधानता रहती है।

***

49 महाभारत : अनुशासन पर्व, 145.दा०
50 महाभारत : शान्तिपर्व, 166.24

वायुदेव के तृतीय अवतार आनन्दतीर्थ मध्वाचार्य

शत्रुघ्नश्रीनिवासाचार्य पं. शम्भुनाथ शास्त्री 'वेदान्ती'

साहित्य-व्याकरणाचार्य, एम.ए. (संस्कृत),
दीक्षित वैष्णवाचार्य, प्रवचनकर्ता,
सराय यूनिवर्सिटी रोड, (काली मन्दिर) रकाबगंज गली,
(नीमगाछ मजार) भागलपुर।

यह आह्लादक संयोग है कि वैष्णव भक्ति परम्परा के चार संस्थापक आचार्यों में मध्वाचार्य की जयन्ती भी माघ मास में पड़ती है। उनका जन्म 1199ई. में माघ शुक्ल सप्तमी के दिन हुआ था। इस चतुःसम्प्रदायाचार्यों में उन्हें वायु का अवतार माना गया है। मध्वाचार्य शैव तथा वैष्णव परम्परा के साथ राम और कृष्ण की परम्परा के एकीकरण में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। महाभारततात्पर्यनिर्णय ग्रन्थ में इस समन्वय का विवरण प्राप्त होता है। मध्वाचार्य का मुख्य स्थान उडुपी, कर्णाटक है किन्तु उत्तर बिहार मिथिला में भी इनकी शिष्य परम्परा मिलती है। जयधर्म तथा उनके शिष्य परमहंस विष्णुपुरी इसी शिष्य परम्परा में आते हैं तथा आसाम के शंकरदेव और चैतन्य महाप्रभु इन्हीं के द्वारा बनाये सिद्धान्त पर चले हैं। ऐसे में मध्वाचार्य की परम्परा में वायु का विवेचन महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इसी परम्परा में मध्वाचार्य के शिष्य त्रिविक्रम पण्डित के द्वारा रचित वायुस्तुति यद्यपि अपने गुरु की स्तुति है, किन्तु वह विष्णुस्वरूप वायु की भी व्याख्या लक्षणा एवं श्लेष के द्वारा करती है।

वैदिक सनातन धर्म की रक्षा केलिए भगवान् अपने ही अंश से अवतार ग्रहण करते हैं। धर्म की रक्षा करना ही ईश्वर का प्रधान संकल्प है। भारतीय शास्त्रों में इनके अवतार की गाथा गायी गयी है। जिस प्रकार भगवान् नारायण अपने अंशों सहित 24 अवतार लेकर दुष्टों का संहार करते हैं वैसे ही भगवान् अपने अंश से संत के रूप में अवतरित होकर भक्ति की प्रतिष्ठापना करते हैं। श्रीवैष्णव धर्म की रक्षा केलिए मुख्य रूप से चार सम्प्रदायाचार्यों ने पृथ्वी पर अवतार लिया है- रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य एवं निम्बार्काचार्य। उन्हीं चतुर्व्यूह सम्प्रदायाचार्यों में भगवान् मध्वाचार्य वायु के तीसरे अवतार माने जाते हैं।

भारतीय संस्कार में सृष्टि पाँच महाभूतों से उत्पन्न कही गयी है- पृथ्वी, जल तेज, वायु एवं आकाश- ये पाँच महाभूत हैं। इनमें वायु को प्रत्यक्ष देव अर्थात् ब्रह्म कहा गया है। तैत्तिरीय-उपनिषद् के शिक्षा वल्ली के प्रथम तथा बारहवें अनुवाक में वायु को ब्रह्म कहा गया है।

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि।[1]

स्वयं मध्वाचार्य ने स्वरचित ग्रन्थ महाभारत-तात्पर्य निर्णय में अपने को वायु का तृतीय अवतार घोषित किया है। मध्वाचार्य को पूर्णप्रज्ञ (दीक्षा नाम), मध्यमन्दिर, आनन्दतीर्थ आदि नामों से प्रसिद्धि मिली है।

1 तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षा वल्ली, प्रथम अनुवाक

'मध्व' शब्द में 'मधु' और 'व' दो शब्द हैं। 'मधु' का अर्थ 'आनन्द' और 'व' का अर्थ 'तीर्थ' है। 'तीर्थ' शब्द शास्त्रपरक करने से 'मध्व' शब्द का अर्थ होता है- जिसका तीर्थ अर्थात् शास्त्र आनन्द प्रदान करनेवाला हो।आनन्दतीर्थ नाम में उपर्युक्त अर्थ ही सम्प्रदायप्राप्त है।कुल मिलाकर चार शब्दों में से इनका बोध होता है- 1. मध्वाचार्य, 2. आनन्दतीर्थ. 3. पूर्णप्रज्ञ, 4. मध्यमन्दिर।

मध्वाचार्य के विषय में कहा गया है-

मध्वस्यानन्द उद्दिष्टो वेति तीर्थमुदाहृतम्।
मध्व आनन्दतीर्थः स्यात् तृतीया मारुती तनुः॥[2]

माधवाचार्य ने अपने ग्रन्थ सर्वदर्शनसंग्रह में लिखा है-

एतच्च रहस्यं पूर्णप्रज्ञेन मध्यमन्दिरेण वायोस्तृतीयावतारम्मन्येन निरूपितम्।[3]

अर्थात् स्वयं पूर्णप्रज्ञ मध्वमन्दिर ने अपने आप को वायु का तीसरा अवतार माना है। इस उद्घोष को माधवाचार्य ने रहस्य कहकर उद्घाटित किया है। वे आगे लिखते हैं-

प्रथमस्तु हनूमान् स्याद् द्वितीयो भीम एव च।
पूर्णप्रज्ञस्तृतीयश्च भगवत्कार्यसाधकः॥[4]

तदनुसार मध्वाचार्य ने अपने स्वरचित महाभारत-तात्पर्यनिर्णय ग्रन्थ के तृतीय अध्याय में स्वयं को वायु को अवतार घोषित किया है-

तस्माद्विष्णोर्हि महिमा भारतोक्तो यथार्थतः।
तस्याङ्गं प्रथमं वायुः प्रादुर्भावत्रयान्वितः।।
प्रथमो हनुमान्नाम द्वितीयो भीम एव च।
पूर्णप्रज्ञस्तृतीयस्तु भगवत्कार्यसाधकः।।[5]

अर्थात् परमपिता भगवान् विष्णु के अङ्ग वायुदेव का सृष्टि के प्रारम्भ में ही प्रथम प्रथम प्रादुर्भाव हुआ और उनके तीन अवतार क्रमशः हनुमानजी, भीम और पूर्णप्रज्ञ (मध्वाचार्य) हुए।

पुनः महाभारततात्पर्यनिर्णय ग्रन्थ के अन्तिम में मध्वाचार्य अपने वायु अवतार की प्रामाणिकता दिखाते हुए कहते हैं कि वेद के वाक्यों में तीन पर्याय के रूप में में तीन स्वरूपों का उल्लेख मिलता हैं- बडित्था और तद्वर्शतम्।

बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं
देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिऋतस्य
धेना अनयन्त सस्रुतः॥[6]
यस्य त्रीण्युदितानि वेदवचने रूपाणि दिव्यान्यलं
बट्तद्दर्शतमित्थमेव निहितं देवस्य भर्गो महत्।
वायो रामवचोनयं प्रथमकं पृक्षो द्वितीयं वपुः
मध्वो यत्तु तृतीयमेतदमुना ग्रन्थः कृतः केशवे।।[7]

इसका अर्थ है कि उपर्युक्त श्रुति इस रूप मे ही (बट्- बलात्मक, दर्शतम्- ज्ञानपूर्ण) जिस वायुदेव के भर्ग (भरण एवं गमन) रूपी गुण और महत् नामक तत्त्व माने गये हैं, उस वायु का यह प्रथम शरीर वह है जो राम के संदेश को सीता तक पहुँचानेवाला हनुमान का अवतार है। दूसरा शरीर पृक्ष सेनानायक, (पृ- पृतना -सेना, क्ष= क्षि धातु- नाश करना, कौरव सैन्य का

2 गंगूर मध्वाचार्य (सम्पादक), सर्वमूलग्रन्थाः भाग 2, मुळवागिलु, 1998, ऐतरेयोपनिषद् भाष्य तथा छान्दोग्योपनिषद् भाष्य के अन्त में, क्रमशः पृ. 755 तथा पृ. 872.

3 माधवाचार्य, सर्वदर्शनसंग्रह, पूर्णप्रज्ञदर्शनम्, 54, उमाशंकर शर्मा ऋषि (सम्पादक), चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, पृ. 294

4 माधवाचार्य, सर्वदर्शन संग्रह उपर्युक्त, पृ. 294

5 मध्वाचार्य : महाभारत तात्पर्यनिर्णय : 2.118.

6 ऋग्वेद : 1.141.1.

7 मध्वाचार्य : महाभारत तात्पर्यनिर्णय : 32.166।

विनाश करनेवाला भीम का है तथा तीसरा शरीर मध्व का जिसके द्वारा केशव केलिए ग्रन्थ लिखा गया है। महाभारततात्पर्यनिर्णय के इस श्लोक को सर्वदर्शन-संग्रह में भी उद्धृत किया गया है।

मध्वाचार्य कृत ब्रह्मसूत्रभाष्य के नवम अधिकरण, सर्वशास्त्रार्थनिर्णय, विष्णुतत्त्वनिर्णय तथा अन्य स्थलों पर भी उनके वायु-अवतार होने का उल्लेख है।

मध्वाचार्य का संक्षिप्त परिचय

वायु के अवतार मध्वाचार्य का जन्म दक्षिण भारत के उडुपी के निकट तुलुव क्षेत्र के अधीन वेली नामक स्थान पर विक्रम संवत् 1256 (1199ई.) को माघ शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन हुआ था। भगवान् नारायण की आज्ञा से उनके ही अंश स्वयं वायुदेव ने ही भक्ति सिद्धान्त की रक्षा केलिए भार्गव गोत्रीय नारायण भट्ट के पुत्र के रूप में माता वेदवती के गर्भ से आचार्य मध्व के रूप में अवतार लिया था।

11 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने अद्वैत मत के संन्यासी सनक कुल के आचार्य शुद्धानन्द अच्युत-प्रज्ञाचार्य से दीक्षा ग्रहण कर संन्यास आश्रम में प्रवेश लिया। इनके गुरु ने इनका संन्यास नाम पूर्णप्रज्ञ रखा। शिष्य ने वायु की गति से सकल शास्त्र को आत्मसात् कर लिया।

वेदान्त में पारंगत हो जाने पर इन्हें आनन्दतीर्थ का नाम दिया गया तथा मठाधीश बनाया गया। अद्वैत मत के सिद्धान्त से असंतुष्ट होने के फलस्वरूप इन्होंने द्वैतवाद का प्रवर्तन किया।

मध्वाचार्य का मत

माध्वमत के संक्षेप में सिद्धान्त यह है कि श्रीविष्णु ही सर्वोच्च तत्त्व हैं। जगत् सत्य है किन्तु ब्रह्म और जीव सत्य रहते हुए भी एक नहीं है अपितु पृथक् पृथक् उनका स्वरूप है। जीव परमात्मा का दास है, जीव कभी

भी ईश्वर नहीं हो सकता है। कहने का तात्पर्य है कि ब्रह्म और जीव का भेद वास्तविक है। जीव ईश्वर के अधीन है, जीवों में तारतम्यता है तथा आत्मा के आन्तरिक सुखों का अनुभव ही मुक्ति है॥ इसी को द्वैतवाद कहते हैं।

मध्वाचार्य के ग्रन्थ-

मध्वाचार्य के ग्रन्थों के अध्ययन से उनके वैदुष्य का पता चलता है। वे अद्वितीय विद्वान् थे। उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचनाकर तात्कालिक पाखण्डवाद का खण्डन किया तथा भक्ति का प्रचार कर लाखों लोगों को कल्याणपथ की अनुगारी बनाया। उन्होंने अपने मत की अभिव्यक्ति केलिए 30 वर्षों तक लेखन किया किया। उनके द्वारा प्रणीत 31 ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है-

मध्वाचार्य के ग्रन्थ

1. ब्रह्मसूत्रभाष्यम्
2. अणुभाष्यम् (सर्वशास्त्रार्थसंग्रहः)
3. अनुव्याख्यानम्
4. न्यायविवरणम्
5. गीताभाष्यम्
6. गीतातात्पर्यम् (गीतातात्पर्यनिर्णयः)
7. दशोपनिषद्भाष्यम्
8. ऋग्भाष्यम्
9. महाभारततात्पर्यनिर्णयः
10. भागवततात्पर्यनिर्णयः
11. यमकभारतम्
12. उपाधिखण्डनम्
13. मायावादखण्डनम्
14. प्रपंचमिथ्यात्वानुमानखण्डनम्
15. तत्त्वोद्योतः
16. विष्णुतत्त्वविनिर्णयः
17. तत्त्वविवेकः
18. तत्त्वसांख्यानम्
19. कर्मनिर्णयः
20. कथालक्षणम्
21. प्रमाणलक्षणम्
22. तन्त्रसारसंग्रहः
23. द्वादशस्तोत्रम्
24. कृष्णामृतमहार्णवः
25. सदाचारस्मृतिः
26. जयन्तीनिर्णयः
27. यतिप्रणवकल्पः
28. न्यासपद्धतिः
29. तिथिनिर्णयः
30. कन्दुकस्तुतिः
31. नरसिंहनखस्तुतिः

जीवन की कुछ अलौकिक घटनाएँ

श्रीमध्वाचार्य ने सम्पूर्ण भारत का परिभ्रमण किया तथा स्थान-स्थान पर शास्त्रार्थ कर विद्वानों के बीच दुर्लभ ख्याति प्राप्त की। स्वामीजी के शास्त्रार्थ का उद्देश्य था- भगवद्भक्ति का व्यापक प्रचार, वेद की प्रामाणिकता की स्थापना, मायावाद का खण्डन तथा शास्त्रमर्यादा का संरक्षण।

गीताभाष्य लिखने के पश्चात् उन्होंने बद्रीनारायण की यात्रा की। मान्यता है कि यात्रा के क्रम में उन्हें भगवान् वेदव्यास का दर्शन हुआ। वेदव्यास ने इनकी साधना पर प्रसन्न होकर इन्हें तीन शालग्राम शिलाएँ दीं थी, जिन्हें इन्होंने सुब्रह्मण्य, मध्यतल एवं उडुपी में स्थापित किया।

एक दूसरी घटना भी अलौकिक थी। एक संमय की बात है कि एक व्यापारी का जहाज द्वारका से मालावार जा रहा था, किन्तु तुलुब के पास वह समुद्र में डूब गया। उस जहाज में गोपीचंदन से ढकी हुई भगवान् श्रीकृष्ण की एक मूर्ति थी। मध्वाचार्य को भगवान् की आज्ञा हुई और उन्होंने जल से मूर्ति निकालकर उडुपी में उन विग्रह की विधिवत् पूजा-अर्चना की तथा स्थापित किया। मध्वाचार्य ने उडुपी में आठ मन्दिरों में स्वयं देवविग्रह की स्थापना की थी। इसी तीर्थस्थल पर उन्होंने अपना मुख्य पीठ भी स्थापित किया। अपने जीवन के अन्त में वे सरिदन्तर नामक गाँव में रहते थे, जहाँ उन्होंने पांचभौतिक शरीर का त्याग भी किया। महाप्रयाण के समय इन्होंने अपने शिष्य पद्मनाभतीर्थ को श्रीराम की मूर्ति तथा और व्यासजी के द्वारा प्रदत्त शालग्राम शिला देकर अपने सिद्धान्त के प्रचार की आज्ञा दी।

वायुस्तुति-विमर्श

भगवान् मध्वाचार्य के शिष्यों में त्रिविक्रम पंडिताचार्य अप्रतिम विद्वान् थे। जनश्रुति है कि उडुपी श्रीकृष्ण मन्दिर के गर्भगृह में श्रीमध्वाचार्य द्वारा की जानेवाली पूजा के समय त्रिविक्रम पण्डित गर्भगृह के बाहर मध्वाचार्य द्वारा प्रणीत द्वादशस्तोत्र का पाठ कर रह थे। उन्होंने अनुभव किया कि भगवान् को नैवेद्य अर्पित करने के क्रम में प्रतिदिन घंटी की जो आबाज आती थी, वह उस दिन सुनाई नहीं पड़ी। उन्होंने खिड़की से झाँका तो देखा कि गर्भगृह में श्रीराम की पूजा हनुमानजी कर रहे हैं तथा भीम श्रीकृष्ण की पूजा कर रहे हैं और स्वयं वेदव्यास मध्वाचार्य के रूप में पूजा कर रहे हैं। इन तीनों का दर्शन कर

त्रिविक्रम भट्ट ने भक्तिविह्वल होकर 'वायुस्तुति'[8] की रचना कर अपने गुरु को अर्पित कर दिया।

वायुस्तुति में कुल 41 श्लोक हैं। ऐसी मान्यता है कि जब मध्वाचार्य ने इन्हें देखा तो उन्होंने इसके प्रणेता त्रिविक्रम से कहा कि यह स्तोत्र केवल उनकी (मध्वाचार्य) की स्तुति में नहीं होनी चाहिए। मध्वाचार्यजी ने उसी समय नखस्तुति (नृसिंह-स्तुति) की रचना की तथा आदेश किया कि इस वायुस्तुति के आदि तथा अन्त में यह स्तुति जोड़ देनी चाहिए।

वायुस्तुति की टीकाएँ

वायुस्तुति पर वेदात्मतीर्थ यति की कविकर्णामृत टीका,और आचार्य गोविन्द की स्तुति-चन्द्रिका टीका उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त अन्य टीकाओं के संकेत भी मिलते हैं। टीकाकारों ने अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करते हुए सम्पूर्ण काव्य को वायुस्वरूप विष्णु की स्तुति के रूप में व्याख्यायित कर इसे वैष्णवों केलिए अमृतग्रन्थ बना दिया है।

वायुस्तुति के चतुर्थ श्लोक में वायु के अवतार मध्वाचार्य की स्तुति वायु के रूप में की गयी है-

अस्याविष्कर्तुकामं कलिमलकलुषेऽस्मिन् जने ज्ञानमार्गम्।
वन्द्यं चन्द्रेन्द्ररुद्र द्युमणिफणिवयोनायकाद्यैरिहाद्य॥
मध्वाख्यं मन्त्रसिद्धं किमुत कृतवतो मारुतस्यावतारं।
पातारं पारमेष्ट्यं पदमपविपदः प्राप्तुरापन्नपुंसाम्

इस स्तुति में त्रिविक्रम भट्ट ने श्रीवायुदेव के महान् गुणों तथा उनकी क्षमताओं का वर्णन किया है। इसके पूर्व के श्लोकों में वायुदेव के चरणों से निकलनेवाली पदपद्मपराग (चरण-धूलि) की वंदना की गयी है। तृतीय श्लोक में वायु की क्षमता को नमन करते हुए वे कहते हैं कि सर्वश्रेष्ठ देवगण भी उन चरण-कमलों में उत्साहपूर्वक शिर झुकाते हैं। उपर्युक्त चतुर्थ श्लोक में कहा गया है कि श्रीवायु लोगों को कलि के कलुषित कुप्रभावों से रक्षित करते हैं। ऐसे वायु-देव की वंदना चन्द्र, रुद्र, इन्द्र, सूर्य शेष तथा गरुड़ भी करते हैं। उसी वायु का अवतार कहकर हनुमानजी काभी नमन करते हैं अथवा मध्वाचार्य को हनुमानजी का अवतार कहकर वंदना करते हैं।

कविकर्णामृत टीका के कर्ता वेदात्मतीर्थ यति ने कलिमलकलुषेस्मिन् की व्याख्या में लिखा है-

कलिकृतं मलं मिथ्याज्ञानम्। तेन कलुषे कलुषिते मलिनीभूते अस्मिन् जने ज्ञानयोग्ये जने लोके किं वा पाठान्तरे कलिकृतं मलं मिथ्याज्ञानम्।

अर्थात् कलि का मल मिथ्याज्ञान है, जो ज्ञानयोग्य जन में भी व्याप्त है उस मल को भगवान् वायु दूर करते हैं।

इसप्रकार, वायुस्तुति में त्रिविक्रम पण्डित ने एक ओर अपने गुरु मध्वाचार्य की स्तुति की है तो दूसरी ओर लाक्षणिक अथवा श्लिष्ट अर्थ में वायुदेव रूप विष्णु की भी स्तुति की है। इस प्रकार, सम्पूर्ण वायुस्तुति वायुदेव के विशिष्ट गुणों के विषय में ज्ञान केलिए पठनीय है।

***

8 त्रिविक्रमपण्डिताचार्य्य, वायुस्तुति, विद्यारत्नाकर डा. बन्नञ्जे गोविन्दाचार्य, ऋषीकेशतीर्थसंस्थानम्, रजतपीठपुरम्, उडुपि, 1911ई.

वायुतत्त्व और हमारा असंतुलित हो रहा पर्यावरण

डा. राजेन्द्र राज
स्वतंत्र पत्रकार एवं पूर्व प्राचार्य, जनता कॉलेज, सूर्यगढ़ा पुरानी बाजार, सूर्यपुरा, पोस्ट और थाना- सूर्यगढ़ा, जि. लखीसराय (बिहार), ईमेल- rajendraraj8140@gmail.com

प्रकृति वायुमंडल में फल-फूल रही है। पृथ्वी के चारों ओर स्थित वायुमंडल के कारण जैविक जगत् जीवित है। इस व्यावहारिक तथ्य को भारतीय परम्परा में अध्यात्म की दृष्टि से देखा गया है तथा वायु को विविध प्रकार से सर्वशक्तिमान् देव के रूप में स्वीकार किया गया है। लेखक का मत है कि "भारतीय दर्शन की यह विशेषता है कि सत्य के दर्शन से हृदय की गाँठ खुलती है। शोक एवं संशय दूर होते हैं, तत्त्व के प्रकृत स्वरूप का अध्ययन होता है। ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान ही तो तत्त्व है।" किन्तु खेद का विषय है कि हम भौतिकवाद के कारण प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़कर तत्त्वों में प्रदूषण की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। जल प्रदूषित हो रहा है, वायु प्रदूषित है। हम ऊर्जा के लिए इन तत्त्वों का दोहन कर विनाश के कगार पर पहुँच रहे हैं। हमरा अध्यात्म भी हमें इस असंतुलन के बचने का संदेश देता रहा है। अनेक कवियों ने भी वायु की शुद्धता बनाए रखने के लिए संदेश दिये हैं।

भारतीय दर्शन शास्त्र में तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, तत्त्व-मीमांसा, धर्मशास्त्र, धर्मदर्शन, ज्ञान मीमांसा ही मूल शास्त्र हैं। जो तत्त्व मीमांसा है, वह इसलिए अधिक महत्त्वपूर्ण है कि यह विश्व के मूल में निहित है और आधारभूत सत्ता या पदार्थ है। समस्त विश्व के उद्भव, विकास आदि की व्याख्या की जाती है। ईश्वर विज्ञान, विश्व विज्ञान या तत्त्व विज्ञान के अन्तर्गत ही तत्त्वों का विश्लेषण किया जाता है। ब्रह्मांड विज्ञान में सत्ता के अध्ययन की मीमांसा की जाती है। ज्ञान मीमांसा में वास्तविकता के सिद्धांत, यथार्थ के स्वत्व दिक् और काल का अध्ययन किया जाता है। चेतना की प्रकृति, मन और पदार्थ के बीच के संबंध के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। तत्त्व का ज्ञान हो सके -यही तो भारतीय दर्शन है। इस दर्शन से ही दुखों की निवृत्ति या तत्त्व का ज्ञान होता है। वास्तविकता है कि ज्ञान के लिए ही भारत में दर्शन का जन्म हुआ है। चार्वाक, मीमांसा, न्याय वैशेषिक, सांख्य योग, वेदांत, जैन तथा बौद्ध वैभाषिक और अन्य सम्प्रदाय के उदय के मूल में यही तत्त्व है।

भारतीय दर्शन की यह विशेषता है कि सत्य के दर्शन से हृदय की गाँठ खुलती है। शोक एवं संशय दूर होते हैं, तत्त्व के प्रकृत स्वरूप का अध्ययन होता है। ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान ही तो तत्त्व है। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है कि आदित्य मंडल में स्थित ब्रह्म का मुखज्योतिर्मय पात्र से ढँका है। मुझ सत्यधर्मी की आत्मा की उपलब्धि के लिए तू उस पात्र

को सामने से हटा दे-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्
तत्त्वं पूषन्नपावणु सत्यधर्माय दृष्टये।

परम सत्य या परमतत्त्व को हमारे दर्शन में एकमात्र ब्रह्म या आत्मा कही जाती है।

एक ही प्रकार के परमाणु से बना हुआ पदार्थ तत्त्व है। सोना के परमाणु का अध्ययन करने पर दूसरा पदार्थ नहीं मिलता। सभी तत्त्वों के गुण अलग-अलग होते हैं। गुण-धर्म के आधार पर इनकी व्याख्या की जाती है। अब तक 118 तत्त्व की खोज की गई है और इनमें 94 प्राकृतिक तत्त्व कहे जाते हैं।

संगीत के सुर सात होते हैं। वस्तुतः ब्रह्म वह है, जिससे सारा विश्व उत्पन्न होता है। यह ईश्वर या परमात्मा है। जीव जन्म ले कर इसी में समा जाते हैं। वेदांत में ब्रह्म चेतन सत्ता है,जो अखंड, अनादि और त्रिगुणात्मक है- सत् चित और आनंद से युक्त। प्रकृति में सत्त्व, रज और तम है। त्रिगुणात्मक सत्ता प्रकृति से सृष्टि और सृष्टि से सूर्य, चंद्र, पृथ्वी, ग्रह और उपग्रह आदि हुए हैं। ब्रह्मांड का निर्माण धरती,जीव-जंतु आदि आठ तत्त्वों से माना जाता है, लेकिन हम पाँच तत्त्व के बारे में जानते हैं। भगवान श्रीराम ने किष्किंधाकांड में बाली की रोती हुई विधवा तारा को समझाते हुए वार्तालाप करते हैं-

तारा बिकल देख रघुराया।
दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया॥
छिति जल पावक गगन समीरा।
पंचरचित यह अधम शरीरा॥

संत कवि ने संसार की नश्वरता और आत्मा की नित्यता को इस तरह से सहज रूप में कह दिया है कि आज जन-जन के मुखारविंद से यह दोहा शोक के क्षणों में आ जाता है। मृत्यु के अनिश्चित काल अवश्यंभावी को ले कर बरबस निकल पड़ता है। संसार को देखने के लिए यह दृष्टि प्रदान करता है, जहाँ जीव जन्म लेता और मृत्यु को प्राप्त करता है। आत्मा ही अमर है।

ईश्वर के निर्गुण भक्ति के उपासक और समाज की कुरीतियों पर प्रहार करनेवाले महात्मा कबीर साहब ने भी अपने एक दोहे में मनुष्य के क्षणभंगुर शरीर को इन्हीं पाँच तत्त्वों से बना पुतला कहा है-

पाँच तत्त्व का पूतरा मानुष धरिया नाय।
दिशि चार के कारने फिर फिर रोके ठाम॥

संसार में जीव का जन्म-मरण का चक्कर लगा रहता है। ईश्वर की भक्ति से ही उसे मोक्ष प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद्-गीता के 7 वें अध्याय के चौथे श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा है-

भूमिरापोऽनलो वायू खं मनोबुद्धिरेव च।
अहंकार इत्तीयं मे भिन्न प्रकृतिरष्ध्या॥

अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ प्रकार की मेरी भिन्न प्रकृतियाँ हैं। 8 वें श्लोक में कहा गया है-

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥8॥

अर्थात् हे कौन्तेय! मैं जल में रस, सूर्य और चंद्रमा में प्रकाश,सब वेदों में प्रणव,आकाश में शब्द और मनुष्यों में पौरूष हूँ"।

ब्रह्मांड की उत्पत्ति में सबसे ऊपर अनंत ॐ है। घने अंधेरे से आकाश और इसके बाद वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का निर्माण हुआ। पृथ्वी पर औषधियों, अन्न, वीर्य एवं पुरुष हुए। तैत्तिरीय उपनिषद में आठ तत्त्व प्रकृति में है- अनंत, आत्मा, पृथ्वी, ख, वायु, अग्नि, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार तो भारतीय दर्शन में पंचमहाभूत- पृथ्वी, नीर, द्रव, आकाश, शून्य, अग्नि एवं वायु हैं। वस्तुतः वायु से अग्नि की उत्पत्ति हुई है। यह वायु हमारे शरीर में प्राणवायु के रूप में है और इसके निकल जाने पर प्राण नहीं रह पाते हैं।

यह वायु ही शरीर को गतिशीलता प्रदान करता है।

"आदि मानव ने आकाश में उगते सूर्य, उषा, सूर्यास्त, इंद्रधनुष, वर्षा, आँधी, चमकते तारों ग्रह और नक्षत्र को देखा होगा तब वे विस्मय से भर गए होंगे। संभवतः प्राकृतिक घटनाओं और शक्तियों के कारण ही अलग-अलग इन तत्त्व के देवता भी हुए।"

इसके असंतुलन से हम दर्द, रक्त की अल्पता, लकवा पोलियो, वात, गठिया आदि से ग्रस्त हो जाते हैं। पंच तत्त्व के ऊपर आत्मा ॐ है एवं इससे ही सब तत्त्व बने हैं। 70% जल, 12 % पृथ्वी, 6% वायु, 6% और आकाश 6% है। करोड़ों वर्ष पूर्व पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति हुई और इस परंपरा को चिरस्थायी बनाने के लिए आर्यभट ने शून्य, चरक ने आयुर्वेद की खोज की। ऋषि-मुनियों ने "वसुधैव कुटुम्बकम्" का आदर्श रखा। यह पृथ्वी और देह एक समान ही हैं और पृथ्वी के समान हमारे भीतर तत्त्व विराजमान हैं। पृथ्वी साँस ले रही है और हमारे भीतर आकाश है जो आत्मा का वाहक है। मन जैसे अनंत है, वैसे ही आकाश अनंत है।

वायु तत्त्व की ही प्रधानता है। अस्तित्व की दृष्टि से उन मूल वस्तुओं या द्रव्यों में वायु का अस्तित्व प्रमुख तत्त्व है। इन सारे तत्त्व से सुख-दुख की संवेदना है। वेदों और पुराणों में सात प्रकार के वायु का वर्णन मिलता है,जो जल के भीतर, आकाश, अन्तरिक्ष, पाताल आदि में हैं। जैसे आत्मा शरीर से गुंथा हुआ है। भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्ग, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक आदि में है। इनका रूप बदलता रहता है। कभी ठंढ़ी तो कभी गर्म व कभी समान हवा चलती है। ये प्रवह, आवह, उद्वह, विवह, परिवह और बराबर के रूप में हैं। पर्वतों पर समुद्र के बाष्प को उड़ाकर आकाश में हवा ले जाती है। धूप, ताप, गर्मी, धुएँ और धूल से बादल बनते है तब जाकर वर्षा होती है। ये मानसूनी बादल होते हैं और वर्षा होती है।

लैटिन शब्द एयर को ही वायु या गैस कहते हैं। सूर्यमंडल, चंद्रलोक, ग्रह मंडलों सप्तर्षि, ध्रुवों आदि स्थानों की भी वायु है। सच तो यह है कि हमारी पृथ्वी पर की वायु निलंबित गैसों का मिश्रण है और यह रंगहीन, गंधहीन हमारे वायुमंडल में हैं। पृथ्वी पर जीवन की संरचना इसी से होती है। इसके रासायनिक गुण होते है, अर्थात् यह नाइट्रोजन 76%, आक्सीजन 21% आक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बन डाय आक्साइड, नियोन, हीलियम, ओजोन और आर्गन का मिश्रण है। पृथ्वी पर तीन ही तत्त्व पानी, अग्नि और वायु मुख्य रूप से हैं।

बल, बुद्धि, ज्ञान, शौर्य बल और भगवान श्रीराम के परमभक्त हनुमानजी मारुतिपुत्र, पवनसुत आदि नामों से विभूषित हैं। आदि मानव ने आकाश में उगते सूर्य, उषा, सूर्यास्त, इंद्रधनुष, वर्षा, आंधी, चमकते तारों ग्रह और नक्षत्र को देखा होगा तब वे विस्मय से भर गए होंगे। संभवतः प्राकृतिक घटनाओं और शक्तियों के कारण ही अलग-अलग इन तत्त्व के देवता भी हुए। जहाँ वह परमात्मा, मैं और माया है, जिससे संसार है, जीव का शरीर आता तथा चला जाता है, इसे प्रदूषित करने का कार्य हो रहा है। इस पृथ्वी के अस्तित्व पर संकट छा गया है। शोध और अनुसंधान होता है और फिर नया शोध हो जाता है। हम कितने अल्पज्ञ हैं! रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग ने मिट्टी की उर्वरता समाप्त कर दी और आज जैविक कृषि की जा रही है। वायु विषाक्त बनता जा रहा है। कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। अम्लीय वर्षा औा बादल के फटने की घटनाएँ हो रही हैं। विश्व के देशों में जलवायू के असंतुलन होने से बाढ़, बिना मौसम बारिष और

सुखाड़ की स्थिति उत्पन्न हो रही है। ओजोन परत में कमी आ रही है और जीव-जंतुओं की असामयिक मृत्यु हो रही है। प्रदूषण ने दुनिया को चिंतित कर दिया है। जैव विविधता के कई जीव-जंतु विलुप्त होते जा रहे हैं। ग्लोबल वार्मिंग के कारण समुद्र का तापमान बढ़ रहा है। प्रवाल समाप्त होते जा रहे हैं। ये उभयचर - मेंढ़क घट रहे हैं। हमारा जीवन-चक्र प्रभावित हो रहा है। कोविड जैसे विनाशकारी रोग का प्रभाव विश्व ने झेला है और आज भी हम इससे आशंकित हो जाते हैं। इतना सूक्ष्म विषाणु जिसकी कल्पना भी नहीं की गई गई थी। यह तो हमारे देश और विश्व के वैज्ञानिकों के परिश्रम और मानवतावादी विचार का प्रतिफल है कि ऐसी महामारी के उपचार का पता लगा लिया गया। कनाडा समेत अन्य देशों में में प्रदूषण से जीवों की विलुप्तता को लेकर देशों के प्रतिनिधियों के सम्मेलन हो रहे हैं। आज वायु और जल के इस पर्यावरण के संकट को बचाने के लिए सम्मेलन किए जा रहे हैं, फिर भी हम सचेत नहीं हो पा रहे हैं।

शोधकर्ताओं और नीति विशेषज्ञों के साथ विश्व के देशों के जन प्रतिनिधियों को गंभीरता के साथ समझौते या संधि को क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। कॉप 15 के सं. रा. जैव विविधता शिखर सम्मेलन में पृथ्वी के पर्यावरण के सुधार व संरक्षण के समझौते की बात की गई। वैसे इस प्रकार के समझौते 2020 और पहले भी होते रहे हैं,लेकिन अभी भी कमियाँ हैं तथा निरंतर सुधार की अपेक्षा है। हमें ध्यान रखना होगा कि वायु तत्त्व की भी अपनी अलग मौलिकता तथा विशेषता है।

***

"वायु देवता का उद्भव और विकास" पृ. 35 से शेषांश

कहा गया है कि 'वे साक्षात् स्वयंभू ब्रह्मा के शिष्य, संयमी, विद्वान् एवं प्रत्यक्ष द्रष्टा हैं। अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों से युक्त होकर वे पंचप्राणों के रूप में धर्मतः प्राणियों का पालन करते हैं। वे सातों स्कन्धों में एक-एक योजन तक प्रवाहित होते हैं और उनके राज्य में मरुतों के सातों गण अपने-अपने स्थान पर नियत हैं। वे आकाश से उत्पन्न हुए हैं, शब्द एवं स्पर्श इन दो गुणों युक्त हैं तथा तेजस प्रकृतिवाले हैं। वे अत्यधिक क्रियाशील तथा शब्द-शास्त्र विशारद हैं।'

मत्स्य पुराण के 173 वें अध्याय में वर्णित तारकामय देवासुर संग्राम में देवों की ओर से युद्ध करते हुए वायुदेव का मत्स्य पुराणकार ने जो वर्णन किया है उसमें उनकी शारीरिक विशेषताओं का ही अधिक उल्लेख अग्नि के जनक हैं[3], सबके स्वामी हैं। वाद्ययंत्रों से सप्त स्वरों प्राकट्य होता है। वे आकाशचारी, तीव्रगामी तथा वाणी के अधिष्ठाता हैं, आदि-

यमाहुरग्निकर्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम्।
सप्तस्वरगतो यश्च नित्यं गोभिरुदीर्यते॥
यं वदन्त्युत्तमं भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम्।
यमाहुराकाशगमं शीघ्रगं शब्दयोगिनम्॥
स वायुः सर्वभूतायुः उद्भूतः स्वेन तेजसा।

-मत्स्य. 173.29-31

भौतिक एवं दैविक रूपों का यह विचित्र सम्मिश्रण ही वायु के पौराणिक स्वरूप की सर्व प्रमुख विशेषता है और इनके स्वरूप में यह अग्नि से भी अधिक अधिक स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष है।

***

3 तुलना कीजिए, तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः। तैत्तिरीय उप0 2।1।1

वायु, पर्यावरण की सुरक्षा और साहित्य

सुश्री पुनीता कुमारी श्रीवास्तव
लेखिका एवं कवयित्री, पिता- अरविन्द कुमार श्रीवास्तव, महाबीर चबूतरा लाला टोली, डुमराँव जिला-बक्सर (बिहार)

साहित्य जनमानस को प्रभावित करनेवाला बहुत महत्त्वपूर्ण विधा है। भारतीय परम्परा में उपदेश तीन प्रकार के कहे गये हैं। वेद आदि शास्त्र पिता की तरह शासनात्मक उपदेश करते हैं। पुराण आदि कथा सुनाकर मित्र की तरह हमें सही रास्ता दिखाते हैं, किन्तु साहित्य को कान्तासम्मित उपदेश कहा गया है। कान्ता अर्थात् पत्नी जिस प्रकार मनोरंजन के साथ हित-अहित की बात बताती है, वैसा ही उपदेश साहित्य का प्रयोजन है। तीनों प्रकार के उपदेश हमें कल्याण मार्ग पर समान रूप से चलने के लिए प्रेरित करती है। वायुतत्त्व पर कवियों ने भी बहुत शिक्षा दी है तथा प्रकृति को प्रदूषित होने से बचाने के लिए संदेश दिया है। यहाँ कवियों की वाणी में वायुतत्त्व, वायुमंडल प्रदूषण, उससे बचने के लिए विहित उपाय आदि का विवेचन किया गया है। हमारा पौराणिक साहित्य कहता है कि जनहित के लिए दस हजार कूप खुदबाना और एक वृक्ष लगाना समान रूप से फलदायी होता है, तो हम भारतीय परम्परा में प्रकृति के संरक्षण के लिए दृढ भावना देखकर आह्लादित हो जाते हैं। क्या फल मिलेगा यह तो अर्थवाद है यानी प्रेरित करने के लिए कथन है- प्ररोचना है, पर हमें वायुप्रदूषण से बचने के उपायों के प्रति उनकी जागरूकता देखनी चाहिए।

साहित्यकार समाज के पथ-निर्देशक होते हैं। वे लोगों को उनके हित के लिए जागरूक बनाते हैं। भारतीय परम्परा में कवियों ने वायु, वातावरण तथा इसके संरक्षण के लिए अनेक प्रकार से काव्यों की रचना की है। संस्कृत तथा हिंदी के कवियों ने नायक और नायिकाओं के माध्यम से प्रकृति के संरक्षण और उसे हानि न पहुँचाने के बारे में बताया है। इन्होंने अपने ग्रन्थ में पाँच तत्त्वों के बारे में भी वर्णन किया है। इन पाँचो तत्त्वों को बारीकियों से समझा एवं परखा, उसके बाद प्राण वायु को अपने शरीर में धारण करके प्रकृति के बारे में विश्लेषण किया और उसे अपने ग्रन्थ में लिखा, ताकि जन-जन तक ये बातें पहुँच सके कि हमें प्रकृति की सुन्दरता को कैसे बरकरार रखना है और उसे नष्ट होने से कैसे बचाना है।

आज की सच्चाई है कि जैसे-जैसे पीढ़ी बढ़ रही है वैसे-वैसे प्रकृति की सुन्दरता धुमिल होती चली जा रही है। जो वायु हमारे लिए प्राण वायु है वह वायु विषाक्त और जहरीला होता चला जा रहा है। वायु प्रदूषण के कारण कितने ही लोगों की जाने जा रही है। वायु प्रदूषण का मुख्य कारण है जनसंख्या और वाहनों में बढ़ोतरी। वाहनों में से जो दूषित गैस बाहर निकलकर वायु में मिल जाती है, उसी के कारण वायु प्रदूषित होता चला जा रहा है। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ रही है वैसे-वैसे वाहनों की बढ़ोतरी भी होती चली जा रही है जो वायु प्रदूषण का कारण है। वायु प्रदूषण के कारण वातावरण और पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। पर्यावरण

"सनातन धर्म हमें इसी कार्य के लिए वृक्षारोपण का निर्देश करता है औऱ उसे एक धार्मिक कार्य मानता है। पद्मपुराण में कहा गया है दस कुँआँ खुदबाने के समान एक छोटा तालाब खुदबाना पुण्य का कार्य है। दस छोटे तालाब के बराबर एक बड़े तालाब खदबाना होता है। दस बड़े तालाब खुदबाने के बराबर फल एक कन्या को जन्म देने से मिलता है। और दस कन्या को जन्म देने के बराबर फल एक वृक्ष के लगाने से होता है।"

को प्रदूषण से बचाने के लिए हमें पेड़-पौधों को सुरक्षित रखना होगा, मगर जनसंख्या बढ़ोतरी के कारण पेड़-पौधे कम होते चले जा रहे हैं। लोग पेड़-पौधों को काट-काट कर एवं उस स्थान से हटाकर वहाँ पर मकान और मॉल बना रहे हैं।

पर्यावरण शब्द में 'परि' का अर्थ होता है- 'हमारे चारो ओर' और 'आवरण' का अर्थ होता है- 'ढकना या घेरना' प्रकृति की सभी चीजें जैसे- पेड़-पौधे वायु, जल एवं जीव-प्राणी ये सभी पर्यावरण के ही अंग हैं। पेड़-पौधों के कारण ही वर्षा होती है और वही वर्षा वायु प्रदूषण को कम करने में हमारी मदद करती है ,परंतु जैसे-जैसे पेड़-पौधों की संख्या कम हो रही है, वैसे-वैसे वर्षा की भी कमी होती चली जा रही है, यही वायु प्रदूषण और सुखाड़ का कारण बनता है।

प्राचीन काल में वाहन का अविष्कार नहीं हुआ था, उस समय लोग पैदल ही सफर कर लेते थे और दूर की सफर करने के लिए बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी और रथ हुआ करती थी। वाहन न रहने के कारण वायु प्रदूषित ही नहीं होता था। उस समय चारो तरफ हरे भरे पेड़-पौधे ही दिखाई पड़ते थे, उसी से लोगों को शुद्ध हवा और ऑक्सीजन प्राप्त हो जाया करती थी। उस समय के ऋषि-मुनियों के द्वारा किए गए यज्ञों से वायु स्वच्छ रहता था एवं कोई भी इंसान बीमार नहीं पड़ता था, अगर कोई बीमार पड़ भी जाता था तो बहुत जल्द ठीक भी हो जाता था। अब तो कितना भी यज्ञ और हवन कर लिया जाए, परंतु वायु प्रदूषण से निजात मिलता ही नहीं है। अब वायु इतना प्रदूषित हो गया है कि मनुष्य की आयु धीरे-धीरे कम होती चली जा रही है। वायु प्रदूषण के कारण ही लोग कम उम्र में ही बूढ़े की तरह नजर आने लग रहे है। अशुद्ध हवा बढ़ने के कारण लोगों में घुटन बढ़ती चली जा रही है और समय से पहले ही मृत्यु हो जा रही है। वृक्षों का पालन करने से ईश्वर की कृपा भी प्राप्त होती है, परंतु वृक्षों की घटती संख्या ही वायु प्रदूषण का रुप ले रही है।

ऐसी परिस्थिति में हम यहाँ देखेंगे कि इस पर्यावरण के संरक्षण के लिए भारत की परम्परा कैसे हमें जागरूक बनाती है। सनातन धर्म हमें इसी कार्य के लिए वृक्षारोपण का निर्देश करता है औऱ उसे एक धार्मिक कार्य मानता है। पद्मपुराण में कहा गया है दस कुँआँ खुदबाने के समान एक छोटा तालाब खुदबाना पुण्य का कार्य है। दस छोटे तालाब के बराबर एक बड़े तालाब खदबाना होता है। दस बड़े तालाब खुदबाने के बराबर फल एक कन्या को जन्म देने से मिलता है। और दस कन्या को जन्म देने के बराबर फल एक वृक्ष के लगाने से होता है-

दशकूपसमा वापी दशवापी समो ह्रदः।
दशह्रदसमा कन्या दशकन्यासमो द्रुमः॥
एषा वै शुभमर्यादा नियता लोकभाविनी॥ 464॥

-पद्मपुराण, सृष्टिखंड, 40.464. आनंदाश्रम संस्कृत ग्रन्थवली, पुणे, 1895ई.

संस्कृत के कविकुल गुरु कालिदास प्रकृति से बहुत प्रेम करते थे, इसी के कारण वे लोगों को पेड़-पौधों के रोपण एवं उसके संरक्षण के लिए आग्रह करते थे। उनका हमेशा यही कहना था कि जब पेड़-पौधे सुरक्षित रहेंगे तब हीं हम सब सुरक्षित रह पायेंगे, पेड़-पौधों के कारण ही हमें शुद्ध हवा और ऑक्सीजन प्राप्त होता है। मनुष्य के लिए तो वायु ही जीवन है अगर वायु ही शुद्ध नहीं रहेगा तो मनुष्य की मनोवृतियाँ भी अषुद्ध हो जाएगी। कालिदास का ये भी कहना था कि अगर कोई विश का वृक्ष भी स्वयं ही उग आए तो भी उसे नहीं काटना चाहिए-

विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्॥

-कुमारसम्भव, 2.55.

'रामचरितमानस' के 'किष्किन्धाकाण्ड' में गोस्वामी तुलसीदासजी ने पाँच तत्त्व के बारे में वर्णन किया है:-

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा॥ 4.11.

इन्होंने इस ग्रन्थ में प्रकृति के साथ-साथ 'गंगा' और 'सरयू नदी' के माध्यम से पर्यावरण का भी चिंतन किया है। इसके अलावा इन्होंने इस ग्रन्थ में सीता और लक्षमण को वृक्ष लगाते हुए भी दिखाया है जैसे -

तुलसी तरुवर विविध सुहाए।
कहुं-कहुं सिय, कहुं लखन लगाए॥

मनुष्य का पहला कर्तव्य पर्यावरण को सुरक्षित रखना होना चाहिए। भारत का साहित्य और दर्शन तो पर्यावरण पर ही केंद्रित है। आरम्भ से ही हिन्दी साहित्य में प्रकृति और पर्यावरण के अनावश्यक बर्बादी का विरोध किया गया है। सभी युग और काल के कवियों ने अपने-अपने ग्रन्थ में प्रकृति और पर्यावरण की चर्चा अवश्य किया है, क्योंकि वे सभी पर्यावरण के प्रति सजग थे। आदिकाल के सुप्रसिद्ध कवि के रुप में विद्यापति को जाना जाता है। इन्होंने प्रकृति का वर्णन यानि वसंत ऋतु और इस ऋतु में बहनेवाली हवा का वर्णन बहुत ही रोचक तरीकों से किया है। इस ऋतु में बहनेवाला वायु मन को प्रफुलित कर देता है और हम सभी को नए-नए उमंगों में भर देता है। ये वसंती हवा पृथ्वी के वातावरण को बहुत ही षोभनीय और उत्साहपूर्ण बना देता है और पाँचों तत्त्वों से हमारा क्या रिष्ता है ये भी बतलाता है।

इसी तरह भक्तिकाल के 'कवि रहीम' भी जीवन के तत्त्वों का ज्ञान कराने के लिए एवं सिखलाने के लिए और इसके साथ हमारे रिश्तों का ज्ञान कराने के लिए 'पानी' को माध्यम बनाया है और उसे दोहा के रूप में लिखा है:-

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सुन!
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुस चुन!!

पाँचों तत्त्वों के मूल को समझने के लिए रीतिकाल के एक 'देव' नामक कवि ने एक सवैया लिखा है जिसका नाम है ''हँसी की चोट''। जिसमें पाँचो तत्त्वों का वर्णन किया गया है। इस सवैये में 'श्रीकृष्ण भगवान' के विरह में व्याकुल गोपियों का वर्णन किया गया है। व्रज और गोकुल की गोपियाँ 'श्रीकृष्ण भगवान' से बहुत प्रेम करती थी एवं उनको ही अपना सबकुछ मानती थी। उनके मुरली की धुन सुनकर सभी गोपियाँ अपना काम छोड़-छोड़ कर उनके पास आकर नृत्य करने लगती थी एवं उन सबका प्रेम लौकिक था। जब तक 'श्रीकृष्ण भगवान' व्रज और गोकुल में रहे तब तक सभी गोपियों के संग रास रचाया करते थे। जब वे द्वारिका चले गए तब उनके विरह में सारी गोपियाँ चिंतित हो गई और उनके चेहरे की मुस्कान और छवि देखने के लिए व्याकुल हो उठी। इसी का वर्णन करते हुए कवि देव कहते है कि उस समय जब गोपियाँ चिंता के मारे जोर-जोर से साँस ले लेकर छोड़ रही थी इससे उनके शरीर का 'वायु तत्त्व' चला गया। प्रेम की पीड़ा को न बर्दाष्त करने के कारण उनके

आँखो से जो आँसू निकल रहे थे उससे 'जल तत्त्व' चला गया। नृत्य करने से जो उनके शरीर में गर्मी आ जाया करती थी अब तो वह सुख उन सबसे छिन चुका था एवं उनके शरीर की गर्मी चले जाने के कारण 'अग्नितत्त्व' चला गया। वियोग में पड़कर उन सबका शरीर कमजोर पड़ गया था इसके कारण 'पृथ्वीतत्त्व' चला गया। नायिका के माध्यम से ही कवि ने इस घटना का वर्णन करवाया है। इस सवैये में अनुप्रास अलंकार, यमक अलंकार, अतिशयोक्ति अलंकार, विरोधाभास अलंकार, पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार आदि है।

इसी तरह आधुनिक काल के साहित्यकारों ने जैसे - हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, भारतेन्दु हरिष्चंद, बद्रीनारायण चौधरी जगमोहन सिंह और राधाकृष्ण दास ने भी प्रकृति और पर्यावरण के शोषण करने वालों के विरुद्ध आवाज उठाया है। इनलोगों ने भी अपने-अपने कविताओं में प्रकृति का सुन्दर-सुन्दर चित्रण करके लोगों को संदेश दिया है कि हमें प्रकृति और पर्यावरण को कैसे सुरक्षित रखना है।

इन कवियों के साथ-साथ द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी अपने साकेत, पंचवटी, सिद्धराज, यशोधरा आदि ग्रन्थ में प्रकृति के दृश्य का बहुत ही मनोरम और सुंदर चित्रण किया है जैसेः-

चारु चंद्र की चंचल किरणें
खेल रही हैं जल थल में,
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है
अवनी और अम्बरतल में॥

इनके अलावा द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त के बाद स्थान रखनेवाले एवं हिन्दी में 'कवि सम्राट' के रुप में याद किए जानेवाले अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी अपने 'प्रियप्रवास' नामक महाकाव्य जिसे खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। इस महाकाव्य में 'राधारानी' के हृदय में उठी दर्द और व्यथा को प्रकृति के माध्यम से बहुत ही शोभनीय और मनोहारी वर्णन हुआ है और श्रीकृष्ण भी अपने मन में उठे पीड़ा को प्रकृति का सहारा लेकर उसे बताने का प्रयत्न करते हैं, उसका भी वर्णन है:-

उत्कंठा के विवश नभ को, भूमि को पादपों को।
ताराओं को मनुज मुख को प्रायशः देखता हूँ।
प्यारी! ऐसी न ध्वनि मुझको है कहीं भी सुनाती।
जो चिंता से चलित-चित की शांति का हेतु होवें।

जब भी भगवान विष्णु पृथ्वी पर अवतरित होते हैं, तब उनके साथ वायु किसी न किसी रुप में उनके साथ ही रहते हैं और धर्म के संरक्षण के कामों में उनकी सहायता करते हैं। 'त्रेतायुग' में 'वायु' 'हनुमान' के रुप में 'श्रीराम भगवान' के सहायक हुए। 'द्वापर युग' में वायु 'महाभारत' के समय 'भीम' के रुप में स्थापित हुए। वहीं अब इस 'कलियुग' में वायु आत्माओं को लाने, यानि साधन के रुप में कार्य करते हैं। वायु का प्रथम अवतार हनुमानजी को, दूसरा अवतार भीम को और तीसरा अवतार माधवाचार्य को माना जाता है।

हो प्रेम प्रकृति से जिसे
वो अद्भुत करतब दिखाएगा,
वायु तत्त्व से जुड़कर वह
अपना कर्तव्य निभाएगा॥

***

कवियों की दृष्टि में वायु

सन्दर्भ 'जुही की कली'

डॉ. विजय विनीत
पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, जनता महाविद्यालय सूर्यगढ़ा (लखीसराय), पिन– 811106

वायु अध्यात्म में पंचभूतों में सृष्टि के कारण के रूप में महत्त्वपूर्ण है। आयुर्वेद में तो कफ पित्त तथा वायु तीन तत्त्वों में एक है। वैशेषिक दर्शन वायु को नौ द्रव्यों में से एक मानता है, वेदान्त दर्शन उसी को आत्मा के रूप में द्रव्य मानता है। पुराणों में वायु कहीं शिव के रूप में तथा कहीं विष्णु के रूप में तो कहीं पृथक् अस्तित्व में वर्णित हैं, किन्तु प्रकृति के बनाये नियम से बिल्कुल स्वतंत्र कवि की भारती कविता में वायु कहीं अल्हड़ नायिका के रूप में वर्णित है तो कहीं कामातुर नायक के रूप में। केदारनाथ अग्रवाल ने इसी वायु को स्त्रीलिंगवाचक शब्द 'हवा' का व्यवहार कर उसे एक अल्हड़ नायिका बना दिया तो सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के उसे नायक के रूप में चित्रित करने की आवश्यकता हुई तो 'पवन' नाम से वर्णित किया। हिन्दी साहित्य में 'जूही का कली' अति विख्यात कविता है। इसके सन्दर्भ में पवन के स्वरूप पर इस आलेख में विवेचन किया गया है।

'जुही की कली' महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी' निराला' की पहली रचना है। इसका रचना-काल 1916 है। यह अर्द्धरात्रि के समय महिषादल में श्मशान में लिखी गयी थी।यह कविता मुक्त छन्द के कारण 'सरस्वती पत्रिका के सम्पादक महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा वापस कर दी गयी थी। यह सबसे पहले' माधुरी' में प्रकाशित हुई। 1922 में शिवपूजन सहाय ने इसे अपने ' आदर्श 'नामक पत्र में प्रकाशित की। जबकि 'मतवाला के अठारहवे अंक (22 दिसम्बर, 1923)में यह छपी। इसके पूर्व 1923 में ही यह 'अनामिका' कविता-संग्रह में छप चुकी थी। पुनः 1929 में 'परिमल में प्रकाशित हुई। यह प्रणय-कविता है। बल्कि यह स्वस्थ काम-बोध की कविता है। इसमें पवन नायक है और जुही की कली नायिका।

विजन परिवेश में 'जुही की कली' कविता में दो प्रमुख व्यापार दिखलाये गये हैं। पहला व्यापार नायिका के स्वस्थ शयन का है और दूसरा रति-क्रिया का। कोलाहल से भरे परिवेश में स्वस्थ शयन नहीं हो सकता और एकान्त के अभाव में रति-क्रिया असम्भव है।

दूसरी ओर 'बसंती हवा' कविता में हिन्दी के लोकप्रिय कवि केदारनाथ अग्रवाल ने हवा को अल्हड़ नायिका के रूप में देखा है। जो बेपरवाह और बेफिक्र है।वह किसी से डरती नहीं। जिधर जाना चाहती है और चली जाती है। उसका कोई घर और ठिकाना नहीं है।इसे न किसी वस्तु की इच्छा है और न किसी बात

की आशा। उसका न तो कोई प्रेमी है और न दुश्मन -

न प्रेमी न दुश्मन
जिधर चाहती हूं
उधर घूमती हूं
हवा हूं, हवा मैं
बसंती हवा हूं।

उसे देखते ही अरहर लजा जाती है। अल्हड़ हवा उसे मनाती है,लेकिन वह नहीं मानती-

मुझे देखते ही
अरहर लजाई
मनाया-बनाया
न मानी,न मानी
उसे भी न छोड़ा
पथिक आ रहा था
उसी पर ढकेला

महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'जुही की कली' कविता में पवन को कामातुर प्रेमी बताया है। कविता का नायक मलय प्रदेशवासी 'अनिल 'है। 'अनिल' वायु या पवन का पर्यायवाची है। अर्द्धरात्रि की नीरवता एवं निस्तब्धता के बीच निर्जन एकान्त वन में बिछे पत्तों की शैय्या (पत्रांक) परवह आसन्न खिली जुही की कली प्रगाढ निद्रा में निमग्न है। सुहाग-रात के मिलन-मोद से भरी-पूरी है। सौभाग्यवती सुन्दरी कोमल वदना तरुणी की भाँति वह पूर्णयौवना कली अपने प्रिय के प्रेम में पगी और उसी की मधुर प्रेम-क्रीडाओं तथा प्रेमालापो से युक्त स्वप्न का आनन्द ले रही है।प्रियतम का स्मरण कर-कर वह थक जाती है। अन्त में शिथिल होकर गंभीर निद्रा में लीन हो जाती है। किन्तु प्रगाढ निद्रा के बीच भावहीन प्रिय को विस्मृत नहीं कर पाती है। जागृतावस्था का स्मरण गंभीर निद्रा के बीच स्वप्न बनकर सामने आता है। प्रिय केबिन उसका मुख्य अनखिला रहता है। यही कारण है कि कवि उसे 'कली' कहता है। हालाँकि वह पूरे अंगों की सत्रह साल की सुन्दरी है। (कवि भी सत्रह वर्ष के हैं)। यहाँ 'तरुणी' शब्द गदराई जवानी का बोध कराता है।

'दृग बन्द किये' में एक ओर जयशंकर प्रसाद की 'आँखों में भरे विहाग री' का भाव है, तो दूसरी ओर नारी सुलभ लज्जा भी। 'शिथिल' से जवानी की अलसता का बोध होता है। पत्र के अंक में सोनेवाली तरुणी की तरुणिमा पत्रांक शब्द से निखर कर आताहै।कामायनी 'प्रसाद' ने लिखा है --

कोमल किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी।

'वासन्ती निशा' का प्रयोग सार्थक है। वसन्त आता है तो मन्मथ की धनुष-डोर पर कुसुमो के पंच वाण सज जाते हैं। कला कुशल कोकिला के कोमल कल-कंठ में काम-कीर्तन भर जाता है।पवन जीवन की किसी मधुर अनुभूति में डूबा हुआ-सा बहता है। 'निशा' शब्द के प्रयोग से अर्द्ध रात्रि एवं तृतीय प्रहर के बीच का वातावरण मूर्तिमान हो उठता है। मलयानिल रात्रि के ढाई-तीन बजे से चलना आरम्भ होता हो।

मलयानिल नायक में प्रेमातुरता है, प्रिय से मिलने की बेचैनी है।आवेग और अधीरता नायक में अर्द्ध रात्रि के बाद ही उत्पन्न होती है। केलि-रंग विशारद के अनुसार ऐसा आवेग 'रजनी के पिछले पहरों में 'ही होता है। पत्रांक में जुही की कली शिथिल सोयी हुई है। निद्रा की अवस्था में कोई शिथिल तभी होता है, जब खूब गाढी नींद पड़ी हो। ऐसा प्रायः उत्तर काल में ही होता है। फिर पुष्प प्रायःउत्तर-काल में ही पुष्पित होते हैं, विशेषतः और सिंगार। इसकी पुष्टि लोकगीत की एक अर्द्धाली से होती है-

'जुही फुलेला आधि रतिया हो रामा'

विरह-विधुर-प्रिया-संग छोड़ किसी दूर देश में स्थित नायक पवन की विह्वलता एवं प्रेमातुरता का चित्रण करते हुए कवि कहता है कि बीती बातों की यादें मलयानिल को विकलांग कर रही है-

आयी याद बिछुड़न से मिलन कीवी मधुर बात,
आयी याद चांदनी की धुली हुई आधी रात,
आयी याद कान्ता की कमनीय गात।

नायक पवन को विगत अभिसार बेला का स्मरण होने लगता है।

उसके नेत्रों के समक्ष एक-एक कर अभिसार के सभी दृश्य सजीव होकर आने लगते हैं। प्रिया मिलन के अनेक रंगीन चित्र उसे घेर लेते हैं। मलयानिल को जो रात याद आ रही है वह चांदनी की धुली हुई रात है। बस फिर क्या था, आवेग की स्थिति में उद्विग्न एवं अधीर हो नायक पवन प्रियतमा से मिलने तीव्र गति से चल पड़ता है। प्रिय-मिलन की उत्कण्ठा एवं आवेग के कारण उसे मार्ग के बाधा-विघ्नो का भी ध्यान नहीं रहता है। अनुराग जब पराकाष्ठा पर होता है,तो वह सारे औचित्य की उपेक्षा कर जाता है। सुमित्रानंदन पंत के शब्दों में-

आकांक्षा का उच्छवसित वेग
मानता नहीं बन्धन विवेक।

मलयानिल 'उपवन-सर-सरित' के साथ 'गहन-गिरि-कानन 'भी पार करता है। अन्ततः पवन(नायक) अपनी प्रेयसी (जुही की कली) के पास पहुंचता है। उससे केलि-क्रीडा करता है और प्रेयसी कली का म्लान मुख मलयानिल के संस्पर्श से खिल उठता है। पवन का क्रियात्मक पथ भौतिक है। भौतिक दृष्टि से पवन जिस उद्वेग से ग्रस्त होता हैवी स्वाभाविक है। पवन का सारा व्यापार मानवीय है।पवन की क्रियाएँ एक विह्वल प्रेमी की क्रियाएं हैं। बाद में 'जुही की कली' की ओर से भी इन क्रियाओं में योग मिलता है।

नायिका तरुणी कली प्रगाढ निद्रा में निमग्न है। सम्भवतः वह स्वप्न में प्रिय समागम के आनन्द का उपभोग कर रही है। उसे इस बात का क्या पता कि स्वप्नों के साजन उसके बहुत समीप, शय्या के पास पहुंचता है। नायक नायिका के समीप निष्क्रिय खड़ा नहीं रह सकता। वह नायिका को जगाने की चेष्टा करता है। नीरवता में थोड़ी भी आहट न होने पाये--परिस्थिति की यही मांग है। अतः प्रिया को जगाने के लिए अधीर नायक उसके कोमल गोल और गोरे कपोल को चूमता है। प्रियाके रोम-रोम से पवन को अपार स्नेह है।

इसलिए वह अपनी प्रिया को सहलाता है, क्योंकि पहले प्रेम स्पर्श होता है। पवन के रग-रग में 'कामनाएं वर्तिका-सी बल रही हैं। 'पवन के चुम्बन से वल्लरी की लड़ी हिंडोल की तरह डोल उठती है। कमनीय गात (फिर कांप उठता है। यह कमनीय गात सुन्दर और सुकुमार है, कपोल गोरे हैं, गोल भी। इस पर भी नायिका जागी नहीं। वह अपने विशाल वक्र नेत्रों को मूंद कर सोयी रहती है। दो (अधरों में राग अमन्द पिये'-प्रसाद)। अधीर नायक आवेग में आकर उस कोमलाङ्गी के सुन्दर, सुकुमार देह को झकझोर डालता है और गोरे गोल कपोल को मसल देता है। नायिका चौंक कर जागती है और मलयानिल के व्यापार में सहयोग करती है। यहाँ चौंक कर जागने में कली का प्रातःकाल प्रस्फुटित होने का सटीक चित्र उपस्थित होता है। जुही की कली चकित होकर अपने चारों ओर चितवन को घुमाती है और फिर चिरप्रतीक्षित अपने प्रिय को समीप पा रोमांचित एवं पुलकित हो उठती है।मुख को नीचे झुका प्रियतम के अधिक समीप आ जाती है और प्रियतम के साथ एक देह हो जाती है।वह नम्रमुख होकर हंसती है। बाद में खिलती है।' नम्रमुख हंसी-खिली / खेल रंग,प्यारे संग' में 'अमरुक शतक' की प्रभाव-छाया विद्यमान है।

अमरुक शतक के निम्नलिखित श्लोक का प्रभाव यहाँ विद्यमान है-

शून्य वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किंचिच्क्षणै:
निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।

विस्रब्धं परिचुम्ब्य जाति पुलकामालोक्य गण्डस्थलीम्
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता॥"

'अमरुक शतक 'के श्लोक में केलि-क्रिया के प्रारंभ में बाला सक्रिय है, जो पति के जगे रहने का अवधान कर लज्जा से नम्रमुखी हो जाती है।'

'जुही की कली' में भी नायिका नम्रमुखी होती है,हंसती है और 'अमरुक शतक ' की चिर चुम्बिता की तरह प्यारे -संग रंग भर खेलती है। पर यहाँ रति-प्रसंग में पहले नायक पवन सक्रिय हुआ है, बाद में नायिका तदनुरूप हुई है। (अमरुक शतक : व्याख्याकार- डा. विद्यानिवास मिश्र, पृष्ठ-83)

हिन्दी के श्रेष्ठ चिन्तक और ललित निबंधकार कुबेरनाथ राय के अभिमत में मलयानिल कामबोध है।

"जुही की कली भीतर-ही-भीतर तरुण हो चली है,पर यौवन-बोध अभी वयःसंधि-द्वार को लांघ ही पाया है। वह 'अमल-कोमल-तनु' है। दृग बन्द किये, शिथिल पत्रांक में 'सोयी है। चेहरे पर विमलता-अबोधता-पवित्रता के भाव अंकित है। और इसी समय 'मलयानिल 'अर्थात् कामबोध उस सोयी हुई जुही की कली को आकर झकझोर जाता है, यौवन का तीव्र सचेत बोध दे जाता है भीतर के स्नायुमंडल को जगाकर।" (किरात नदी में चन्द्रमा, पृष्ठ-20)

वहीं हिन्दी के श्रेष्ठ भाषाविद्, आलोचक डॉ. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु 'ने 'जुही की कली' कविता को एक पौराणिक-मिथकीय कथा की अन्तर्राष्ट्रीय बताते हुए कहा है 'जुही की कली 'परित्यक्ता शकुन्तला है और पवन दुष्यन्त है। वह एक लम्बी विस्मृति के बाद सहसा स्मृति के आलोकित होने पर शकुन्तला से मिलने हेतु गर्व हुआ है और बड़ी द्रुत गति से हिमालय की वन-उपत्यका में पहुंचा है। वहाँ चाँदनी रात है, ठीक वैसी ही, जैसी कण्व ऋषि के आश्रम में थी, जहाँ शकुन्तला से दुष्यन्त का प्रथम मिलन और गन्धर्व विवाह हुआ था। दुष्यन्त को उसी प्रथम मिलन की स्मृति ने झकझोरा है-

'आयी याद विरह से मिलन की वह मधुर रात'

दुष्यन्त स्मृति-विकल होकर शकुन्तला को पाने के लिए मिलनेच्छा से आकुल-व्याकुल भागता है।शकुन्तला की सुन्दर, सुकुमार देह झकझोर डाली जाती है। उसके गोल कपोल मसल दिये जाते हैं और शकुन्तला चौंकती है।' (सर्जनात्मक काव्यालोचन, पृष्ठ -78)

अंजना और पवन का समागम

सुन्दरी अंजना सुरम्य पर्वत पर विचर रही होती है।शीतल, मन्द एवं सुगन्धित हवा का परस पा अंजना हर्ष से भर जाती है। वह मन ही मन पतिदेव केसरी का स्मरण करते घूमने लगती है। काफी देर तक घूमने के कारण उन्हें कुछ परिश्रांति का अनुभव होता है और वह एक शिलाखंड पर विश्राम करने लगती है। अंजना का मन प्रिय पति में रत है। अचानक हवाला एक झोंका अंजना के रेशमी वस्त्र को उड़ा देता है। वह सम्पूर्ण अंगों को फैलाकर वायु को अपनी बाहों में समेट लेना चाहती है।सहसा उसे एक पुरुष शरीर की अनुभूति होती है। वह अपरूप पुरुष कहते हैं- 'चिन्तित न हो देवी!मैं वायुदेव हूँ। मैं सर्वत्र हं। कोई स्थान, क्षण या वस्तु नहीं जहाँ मै अनुपस्थित होऊं। मेरे बिना संसार की गति नहीं है। मेरा तुम्हारा समागम विश्व का कल्याण करेगा। तुम्हारे क्षेत्र से वायु का आत्मज और केसरी का क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न होगा जो विश्व नियंता का उपकारक होगा। परात्पर ब्रह्म का कृपा पात्र होकर संसार का संकटहर्ता होगा।

पाण्डु-पत्नी कुन्ती ने पवनदेव का आवाहन कर भीमसेन को जन्म दिया।

***

गायत्री-साधना से विभिन्न उपासना परम्परा का उदय

श्री महेश शर्मा 'अनुराग'
18. स्नेह नगर,सुभाष नगर के पास, उज्जैन, मध्यप्रदेश पिन 456010

वेद में मुख्यतः सात छन्द हैं- गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ती, त्रिष्टुप् एवं जगती। स्पष्ट है कि इनमें गायत्री एक छन्द है, किन्तु आगम-पद्धति में जब वैदिक मन्त्रों के अनुप्रयोग आरम्भ हुए तो ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के बासठवें सूक्त का दसवाँ मन्त्र जिसमें बुद्धि को प्रेरित करने की प्रार्थना सविता अर्थात् सूर्य से की गयी थी, उस मन्त्र के जप-पुरश्चरण आदि साधनाएँ प्रवृत्त हुई, जिसे हम गायत्री-साधना कहते हैं। इसमें व्याहृतियाँ तथा महाव्याहृतियाँ जोड़कर इसे आगम-पद्धति में सम्मिलित किया गया। यह साधना इतनी विख्यात हुई कि लोग दैनिक नित्यकर्म में भी गायत्री का सहस्र जप करने लगे। सविता के अतिरिक्त अन्य इष्टदेवताओं शिव, गणेश, राम, कृष्ण, लक्ष्मी आदि के लिए भी गायत्री मन्त्र बने। यहीं से विभिन्न साधना की शाखाओं का उदय हुआ। यहाँ लेखक ने गायत्री-साधना की इन परम्पराओं में समन्वय तथा शाखा-भिन्नता का विवेचन किया है।

महामन्त्र गायत्री से विभिन्न उपासना पन्थ का आविष्कार और कैसे ब्राह्म संप्रदाय सौर पन्थ में परिवर्तित हो गया।

अगर मैं कहूँ कि उपासना के सारे पन्थ, जो मोक्ष तक प्राप्त करवा देते हैं, गायत्री से प्रारंभ हुए तो यह बिलकुल भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा। त्रिकाल सन्ध्या उपासना की महिमा में वेद व कई पुराण, रामायण और महाभारत आदि महान् ग्रन्थ महिमा मंडित है। नारद पुराण अध्याय में त्रिकाल सन्ध्या का विवेचन व प्रक्रिया बहुत ही सुंदर रूप में दिया है। प्रायः सभी पुराण एक मत है कि त्रिकाल सन्ध्या में प्रातः बाला गायत्री ब्राह्मी रूप में मध्याह्न सरस्वती युवती वैष्णवी रुप में तथा सायं सावित्री वृद्धा रूप रुद्राणी में उपासित होती आ रही हैं।

प्रणव उपनिषद, स्कंद पुराण और नारद आदि पुराणों के अनुसार प्रणव अर्थात ओंकार की तीन मात्राएं हैं। अकार में सृष्टि कर्ता ब्रह्मा - सावित्री और उकार में पालन कर्ता विष्णु-लक्ष्मी और मकार में संहार कर्ता शिव और सती का नित्य निवास है।

देवी पुराण तो देवी की महिमा से ओतप्रोत है, लेकिन भगवान विष्णु के नायकत्व में श्रीमद्भागवत पुराण को गायत्री स्वरूप और शिव की महिमा से भरे शिव पुराण को गायत्री स्वरूप कहना आश्चर्य की रचना करता है।

इसप्रकार त्रिकाल सन्ध्या में ओंकार की तीनों स्थूल मात्राओं में स्थित ब्रह्मा-विष्णु और शिव की उपासना हो जाती है। तीन महान देवियाँ गायत्री,

सरस्वती और सावित्री जो ब्राह्मी वैष्णवी और रुद्राणी का रुप धारण करती हैं और इसप्रकार त्रिदेवों की शक्तियाँ मूल रुप से सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती का पवित्र स्मरण भी हो जाता है।

त्रिकाल सन्ध्या करने से पूर्व गणेशजी का पावन स्मरण का विधान है। और तीनों संध्याओं के समय भगवान सूर्य को अर्घ्य समर्पित करने का विधान में अविच्छिन्न रुप से जुड़ा हुआ है। गायत्री मन्त्र जप के समय ओंकार वाच्य परब्रह्म का अहर्निश ध्यान और अनुभव के बिना त्रिकाल सन्ध्या पूर्ण नहीं होती। इसप्रकार एक त्रिकाल सन्ध्या प्रक्रिया से ही गाणपत्य, शैव, शाक्त, वैष्णव और सौर के साथ ओंकार वाच्य परिपूर्ण परब्रह्म की भी कल्याणकारी और मोक्ष दायक अनुभूति हो जाती है।

प्रश्न उपस्थित होता है गायत्री त्रिकाल सन्ध्या से ही विभिन्न पन्थ का आविष्कार कैसे हुआ तो नारदपुराण पूर्व भाग प्रथम पाद में प्रातः बाला गायत्री के ध्यान में उन्हें,

आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनी।
गायत्रीच्छन्दसां माता मातर्ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते॥

कहकर ब्रह्मवादिनी अर्थात् ब्रह्मवाद या ब्रह्मा वाद या ब्रह्मा उपासना का पन्थवाली दर्शाया है। इसीप्रकार मध्यान्ह सन्ध्या में-

मध्याह्ने वृषभारूढां शुक्लाम्बरसमावृताम्।
सावित्रीं रुद्रयोनिं चावाहयेदुद्रवादिनीम्।।

में उन्हें रुद्रवादिनी अर्थात रुद्रवाद को चला कर रुद्र या शिव उपासना के पन्थ का आविष्कारक कहा गया है और अन्तिम सायं सन्ध्या में-

सायं तु गरुडारूढां पीताम्बरसमावृताम्।
सरस्वतीं विष्णुयोनिमाह्वयेद् विष्णुवादिनीम्॥

कहकर विष्णुवादिनी बताया है या विष्णु पन्थ आविष्कर्ता बताया है।

इसप्रकार, ब्राह्मी गायत्री ने ब्रह्मवाद या ब्रह्माजी की उपासना का पन्थ चलाया जो बाद में सौरवाद में परिवर्तित हो गया। यूँ भी गायत्री मन्त्र का सविता वास्तव में ब्रह्माजी ही हैं; क्योंकि सूर्यदेव को श्रीमद्भागवत में हिरण्यगर्भ संबोधित किया गया है और ऋग्वेद में ब्रह्माजी की अपार महिमा में हिरण्यगर्भ सूक्त हैं। इसीप्रकार, शतपथ ब्राह्मण में 'प्रजापर्तिवै सविता कह कर और तैत्तिरीय आरण्यक में **'यो ह वै सविता सः प्रजापतिः'** कहकर ब्रह्माजी को सविता घोषित किया है। जिसप्रकार, लक्ष्मीनारायण और उमामहेश्वर का युग्म है उसीप्रकार स्कंद पुराण में बताया है कि सविता वाच्य है और सावित्री वाचक।

नारायणोपनिषद् (15.1) के अनुसार सूर्य मंडल में स्वयंभू ब्रह्मा की उपासना के निम्न स्वर्णिम लाभ बताए हैं-

आदित्यो वै तेज ओजो बलं यशश्चक्षुः श्रोत्रमात्मा मनो मन्युर्मनुर्मृत्युः सत्यो मित्रो वायुराकाशः प्राणो लोकपालः कः किं कं तत्सत्यमन्नममृतो जीवो विश्वः कतमः स्वयम्भु ब्रह्मैतदमृत एष पुरुष एष भूतानामधिपतिर्ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामाप्नोत्येतासामेव देवतानां सायुज्यं सार्ष्टितां समानलोकतामाप्नोति य एवं वेदेत्युपनिषत्॥ १॥

यह बतलाया गया है कि आदित्य या सूर्यमण्डल में जिसे सूर्यदेव मान रहे हैं वे वास्तव में सर्व प्राणियों के अधिपति स्वयंभू ब्रह्मा है और उनकी उपासना से देवताओं का सायुज्य, ब्रह्माजी की तरह सृष्टिकर्तृत्व और उनके लोक की प्राप्ति होती है।

इसी उपनिषद में **"य एवं आदित्ये पुरुषः स परमेष्ठी ब्रह्मात्मा"** में फिर सूर्यदेव के ब्रह्मा है होने की पुष्टि की गई है और निर्देशित किया कि सूर्यमण्डल में जो आदित्य नामधारी पुरुष वे परम स्थान पर विराजित परमेष्ठी ब्रह्मा की आत्मा है।

एक और बहुत बृहत् और अकाट्य प्रमाण है ऋग्वेद में ही **"दिवो धर्ता भुवनस्य"** प्रजापति के द्वारा सूर्यदेव को ही दिन के धर्ता और विभिन्न लोकों के प्रजापति कहा कर प्रजापति ब्रह्मा घोषित किया है। तंत्र ग्रन्थ वैरंच्य कल्प में 'बृहद् गायत्री मन्त्र' में तीनों महान ईश्वर ब्रह्मा, विष्णु और शिव के पृथक पृथक मृत्युंजय मन्त्र दिए हैं इनमें विष्णु मृत्युंजय मन्त्र के पहले ओम नमो नारायण तथा शिवजी के मृत्यंजय मन्त्र में ओम नमः शिवाय पहले जुड़ा है। लेकिन ब्रह्माजी के 3 मन्त्र के पहले **ओम् तत्सत् ब्रह्मणे नमः** के स्थान पर **ओम् घृणि सूर्य आदित्य** दिया है, जिसके निष्कर्ष में सूर्यदेव को ही सीधे सीधे ब्रह्मा मान लिया है।

ब्रह्मपुराण अध्याय 31 में लिखा है-

महायुतिमताश्चैव तेजोयं सार्वलौकिकम्।
सर्वात्मा सर्वलोकेशो देवदेव प्रजापतिः॥
सूर्य एवं त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम्॥

इसमें स्पष्ट होता है कि त्रिलोकी के मूलदेवता सूर्यदेव वास्तव में सर्वात्मा प्रजापति ब्रह्मा है।

भगवान शिव कृत सूर्य स्तुति

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोस्तुते।।

में उन्हें सर्वलोकपितामहम संबोधित किया है, जो केवल, केवल और केवल ब्रह्माजी को ही कहा जाता है। इसीप्रकार, का एक ओर सशक्त प्रमाण है, साम्बपुराण का अध्याय चार में वर्णन किया है-

मित्रत्वेऽवस्थितो देवस्तपस्तेपे नराधिपः।
अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षर एव च।
सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्वान् सृष्टाश्च विविधाः प्रजाः।
ततः स च सहस्रांशुरव्यक्तः पुरुशः स्वयम्॥

सूर्यदेव की प्रशस्ति में लिखे इन श्लोकों में सूर्यदेव को अनादिनिधन ब्रह्मा और सभी प्रजापतियों के तथा सभी प्रजा के रचयिता निरूपित किया है।

जो पुराणों में ब्रह्मा विष्णु और शिव है, वही उपनिषदों में वैश्वानर विराट्, हिरण्यगर्भ और ईश्वर है और इसके गुणों की व्याख्या हम करें तो वैश्वानर पुरुष विराट है। विराट पुरुष भगवान विष्णु ने श्रीकृष्ण रूप में अर्जुन को विराट रूप के दर्शन करवाए। ईश्वर यानि शिव प्राज्ञ या सर्वज्ञ है, विभिन्न धर्मग्रन्थ और तंत्रशास्त्र इसके प्रबल प्रमाण है। इसी क्रम में हिरण्यगर्भ ब्रह्मा तैजस है और सूर्य भी तेजोमय है। इसप्रकार फिर एक बार सिद्ध होता है कि सौर पन्थ ही मूल रूप ब्रह्मा पन्थ है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार देह के सभी अंगों के देवता घोषित किए गए हैं। जिसप्रकार पैरों के विष्णु और हृदय में अहं तत्त्व के रुद्र हैं उसीप्रकार बुद्धि के देवता ब्रह्माजी निश्चित किए गए हैं। गायत्री मन्त्र में सूर्यदेव से बुद्धि दान चाहा है और बुद्धि के देवता ब्रह्माजी होने से सूर्यदेव फिर ब्रह्माजी के पर्याय बन गए।

भविष्य पुराण में तो ग्रहों को किस देवता का अंश है, विवेचन किया गया है जिसप्रकार बुध को भगवान विष्णु और मंगल ग्रह को शिवजी का अंश माना गया है उसी प्रकार सूर्यदेव को सीधे सीधे ब्रह्माजी का अंश या रूपांतर माना गया है। यह उसीप्रकार है जैसे भगवान विष्णु के रूपांतर या अवतार श्रीराम और श्रीकृष्ण है तथा भगवान शिव के रूपांतर हनुमानजी या भैरवनाथ हैं।

कुछ विद्वानों का कहना है कि ब्रह्मा पन्थ में ब्रह्मा का स्थान गणेशजी को चला गया जो पूर्णतः असत्य है। गाणपत्य संप्रदाय तो यथावत है लेकिन ब्राह्म संप्रदाय ने सौर पन्थ का रूप धारण कर लिया। इसप्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गायत्री मन्त्र से ही त्रिदेवों के और सारे उपासना पन्थ का आविष्कार हुआ और ब्रह्माजी की उपासना का पन्थ सौर संप्रदाय में परिवर्तित हो गया।

***

'उत्तररामचरित' की रामायण-कथा

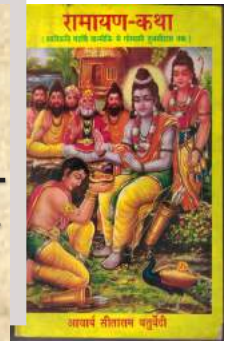

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

यह हमारा सौभाग्य रहा है कि देश के अप्रतिम विद्वान् आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हमारे यहाँ अतिथिदेव के रूप में करीब ढाई वर्ष रहे और हमारे आग्रह पर उन्होंने समग्र वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद अपने जीवन के अन्तिम दशक (80 से 85 वर्ष की उम्र) में किया वे 88 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उन्होंने अपने बहुत-सारे ग्रन्थ महावीर मन्दिर प्रकाशन को प्रकाशनार्थ सौंप गये। उनकी कालजयी कृति रामायण-कथा हमने उनके जीवन-काल में ही छापी थी। उसी ग्रन्थ से रामायण की कथा हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं।

– प्रधान सम्पादक

राज्याभिषेक के लिए आए हुए अतिथियोंको बिदा कर चुकनेपर वशिष्ठ, अरुन्धती और कौशल्या आदि रानियाँ सब ऋष्यशृङ्गके यज्ञमें चले जा चुके थे। अयोध्या में केवल राम और सीता ही रुके रह गए थे। इसी बीच ऋष्यशृङ्गके यहाँसे अष्टावक्रने अयोध्या में रामके पास आकर वशिष्ठका संदेश दिया कि हमारी अनुपस्थितिमें बहुत सावधानीसे प्रजाका पालन किया करते रहना। इसपर रामने उन्हींके द्वारा वशिष्ठको कहला भेजा- 'प्रजाके हितके लिए यदि मुझे स्नेह, दया, सुख, यहाँतक कि जानकीको भी छोड़ देना पड़े तो मुझे कोई दुःख न होगा'-

स्नेहं दयां तथा सौख्यं यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

अष्टावक्रके चले जानेपर लक्ष्मणने वह चित्रावली रामके आगे ला धरी जिसमें रामके जन्मसे लेकर लंकासे लौटनेतकके सब चित्र बने हुए थे। उन्हें देखकर गर्भिणी सीताने कहा कि मैं इन वनोंको फिरसे देखने और गंगामें स्नान करने चली जाना चाहती हूँ। रामने तभी लक्ष्मणसे रथ तैयार करने को कहा और सीता वहीं रामकी गोद में लेटकर सो गईं। इतने में दुर्मुख नामके दूतने नगरका समाचार सुनाते हुए कहा कि प्रजा और तो आपकी सब बातों की बड़ी प्रशंसा करती है पर रावणके यहाँ इतने दिनोंतक रह चुकनेवाली सीताको घरमें रक्खे रखने को ठीक नहीं समझ रही है। तत्काल रामने दुर्मुखसे कहा- जाओ, लक्ष्मणसे कहो कि रथपर ले जाकर सीताको वनमें छोड़ आवें। रामने भी वहाँसे हटकर यमुना तटवासी ऋषियों को सतानेवाले लवणासुरको मारनेके लिए शत्रुघ्न को भेज दिया। तभी दुर्मुखने रथ तैयार होने की सूचना आ सुनाई और लक्ष्मणके साथ रथपर चढ़कर सीता चल दीं।

वनदेवी वासन्ती और तपस्विनी आत्रेयीने अपनी बातचीत में बताया कि वाल्मीकिके आश्रम में दो बड़े मेधावी बालक (कुश और लव) रह रहे हैं, जिनके ग्यारहवें वर्ष में उपनयन संस्कार करके वाल्मीकि उन्हें त्रयी

सीता का पाताल प्रवेश

चित्रकार : राजा रवि वर्मा

भरत मिलाप

चित्रकार : राजा रवि वर्मा

विद्या (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) सिखा रहे हैं। उन्होंने बताया कि एक व्याधने जब क्रौंचके जोड़ेमेंसे एकको मार डाला तव एक नये (अनुष्टुप्) छन्दमें महर्षिकी वाणी फूट पड़ी और उन्होंने उसी छन्दमें रामका सारा चरित ही लिख डाला। इसी प्रसगमें आत्रेयीने बताया कि लोकापवादके भयसे रामने सीताको तो वनमें भेज छुड़वाया और अपने अश्वमेध यज्ञमें उनके बदले स्वर्णकी सीता बनवा रख ली है।

इसी बीच एक ब्राह्मणका पुत्र मर गया जिसे जिलानेके लिए रामने पुष्पक विमानपर चढ़कर दंडकारण्य में तप करनेवाले शूद्र शंबूकको मार डाला और वह ब्राह्मणका मरा हुआ पुत्र जी उठा। दिव्यरूपधारी शंबूकने तभी रामसे आकर कहा कि महर्षि अगस्त्य आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

जब गर्भवती सीताको वाल्मीकिके आश्रमके पास छोड़कर लक्ष्मण चले गए तब सीता गंगा में कूद पड़ीं जहाँ उन्होंने दो बालकोंको जन्म दिया। वहाँ- से गंगा और पृथिवी उन्हें पाताल लिवा लेती गईं और दूध छाड़नेके पश्चात् उन बालकोंको वाल्मीकिके आश्रम में ले जा छोड़ आईं। रामको जनस्थान में आया सुनकर गंगा भी सीताके साथ गोदावरीके पास चला आई और सीतासे कहने लगीं कि आज कुश और लवकी बारहवीं वर्षगाँठपर तुम अपने हाथसे पुष्प बटोरकर सूर्य की पूजा कर डालो। मैं ऐसा प्रबन्ध किए दती हूँ कि तुम किसीको भी दिखाई न दे पाओ। राम भी पुष्पक विमानसे वहीं उतर पड़े जहाँ सीता अदृश्य होकर विराजमान थीं। इतनेमें वासन्तीने आकर कहा कि सीताके पालतू हाथीके बच्चेपर दूसरा हाथीका बच्चा आक्रमण कर बैठा है। इसपर राम और सीता दोनों दुखी हो चले किन्तु सीताका गजशावक जीत गया। उसे देखकर कुश और लवका स्मरण हो आनेसे सीता दुखी हो उठीं। सीताके वियोग में राम भी बड़े दुखी हो चले। तमसाने भी आकर उन्हें सीताके निर्वासनके लिए बहुत धिक्कारा। तब रामके मूच्छित हो जानेपर सीता अपने हाथसे छूकर उन्हें किसी किसी प्रकार चेतन कर पाईं।

रामने तभी वासन्तीको बताया कि मैं अश्वमेध यज्ञ करने जा रहा हूँ जहाँ मैंने सीताके बदले स्वर्णकी सीता बनवा धरी है। यह सुनकर रामके प्रति सीताका प्रेम और भी कहीं अधिक बढ़ गया।

जनक, वशिष्ठ, अरुन्धती और कौशल्या आदि सब वाल्मीकिके आश्रम- में उठे चले आए। सीताके निर्वासनके कारण सब बड़े दुखी हुए जा रहे थे। सीताके निर्वासनपर कौशल्याने तो रामसे बोलना-तक छोड़ दिया था। इतनेमें वहाँ अन्य बालकोंके साथ लव भी आ गया जिसे रामके समान देखकर सब तर्क-वितर्क करने लगे और अरुन्धतीने तो उसे गोदमें ही उठा लिया। उसी समय लक्ष्मणके पुत्र चन्द्रकेतुके संरक्षणमें रामके अश्वमेधका घोड़ा वहाँ आ पहुँचा जिसे लवने झट अपने यहाँ पकड़ बाँधा।

अश्वमेधका घोड़ा पकड़ लिए जानेके कारण चन्द्रकेतु और उसकी सेनाके साथ लवका युद्ध छिड़ गया। लवने कहा कि ब्राह्मण परशुरामके दमन, सुन्दकी पत्नी ताडकाके वध और छिपकर बालीकी हत्या करके रामने कौन- सा बड़ा अच्छा काम कर डाला ? इसपर चन्द्रकेतु और लवमें युद्ध ठन गया।

उसी समय शबूकको मारकर वहाँ आ पहुँचे हुए रामने उन दोनोंको मनाकर शान्त किया। लवको देखकर राम बहुत प्रभावित हुए। चन्द्रकेतुसे रामका परिचय पाकर लवने भी उन्हें प्रणाम कर लिया। रामके पूछनेपर लवने बताया कि हम दो भाई हैं और जृम्भकास्त्र स्वयं हमपर प्रकाशित हो गए हैं। उसी समय कुश भी आ गया और लवसे रामका परिचय पाकर उसने भी उन्हें प्रणाम कर लिया। उन्हें देखकर रामके मनमें विश्वास जमने लगा कि हो न हो ये मेरे ही पुत्र हैं। तभी लव-कुश दोनों राम और सीताके प्रेमका गीत सुनाने लगे जिसे सुनकर राम और भी व्याकुल हो उठे। उसी समय सूचना मिली कि वाल्मीकि, वशिष्ठ, दशरथकी रानियाँ, जनक और अरुन्धती सब यहीं उठे चले आ रहे हैं।

लक्ष्मणने आकर सूचना दी कि आश्रमके पास गंगा-तटपर अप्सराएँ आज वाल्मीकिके काव्य (रामायण)-का नाट्य-प्रदर्शन करेंगी जिसे देखनेके लिए वाल्मीकिने राम और प्रजा सबको बुलवा भेजा है। रामके साथ-साथ सभी लोग वहाँ जा पहुँचे।

उस नाटक में लक्ष्मण-द्वारा वाल्मीकिके आश्रमके पास सीताके त्याग, पृथिवी तथा गंगाके द्वारा सीताकी रक्षा और गंगा में लव-कुशके जन्मके दृश्यको देखकर जब सीता व्याकुल होकर मूच्छित हो चलीं तब पृथिवी भी दुखी हो चलीं और रामको बहुत बुरा-भला कहने लगीं पर गंगाने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त कर दिया। उसी समय जृम्भकास्त्रने प्रकट होकर रामसे कहा कि चित्र दिखाते समय आपने सीतासे कहा था कि जृम्भकास्त्र तुम्हारे गर्भस्थ बालकको प्राप्त हो जायँगे, अतः, हम उन्हें मिल गए हैं। जब नाटकमें सीताको बालकोंके संस्कारकी चिन्ता होने लगी तब गंगाने कहा कि दूध छोड़नेपर मैं इन्हें वाल्मीकिको सौंप आऊँगी। यह दृश्य देखकर लक्ष्मणने रामसे कहा कि ये लव-कुश सीताके ही पुत्र हैं क्योंकि इन्हें दिव्यास्त्र भी मिल चुके हैं और वाल्मीकिके आश्रम में ये बारह वर्ष के हो भी गए हैं। सीताको लेकर जब पृथिवी और गंगा चली गईं तब राम मूच्छित हो गए।

उसी समय सीताको लेकर गंगा और पृथिवी वहाँ आ पहुँचीं और उन्होंने अरुन्धतीके हाथ सीताको सौंप दिया। अरुन्धतीके कहने से सीताने रामको स्पर्श करके चेतन कर दिया। अरुन्धतीने सब पुरवासियों और राम- से कहा कि गंगा और पृथिवी यहाँ स्वयं सीताको पवित्र बता रही हैं, आप लोगों की क्या सम्मति होती है ? सब लोगोंका समर्थन पा चुकनेपर अरुन्धती- ने तभी सीताको रामके हाथ सौंप दिया और बाल्मीकिसे कुश और लवको भी बुलवा मँगानेके लिए कह दिया। सबका सुखमय मिलन हो गया।

॥उत्तररामचरित पूर्ण॥

***

19वीं शती में जब स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष जोर दिया जा रहा था तब हिन्दी भाषा के माध्यम से अनेक रोचक ग्रन्थों की रचना हुई, जिनमें कहानियों के माध्यम से महत्त्वपूर्ण बातें बतलायी गयी। ऐसे ग्रन्थों में से एक 'रीतिरत्नाकर' का प्रकाशन 1872ई. में हुआ। उपन्यास की शैली में लिखी इस पुस्तक के रचयिता रामप्रसाद तिवारी हैं।

इस पुस्तक में एक प्रसंग आया है कि किसी अंगरेज अधिकारी की पत्नी अपने बंगला पर आसपास की पढ़ी लिखी स्त्रियों को बुलाकर उनसे बातचीत कर अपना मन बहला रही है। साथ ही भारतीय संस्कृति के विषय में उनसे जानकारी ले रही है। इसी वार्ता मंडली में वर्ष भर के त्योंहारों का प्रसंग आता है। पण्डित शुक्लाजी की पत्नी शुक्लानीजी व्रतों और त्योहरों का परिचय देने के लिए अपनी दो चेलिन रंगीला और छबीला को आदेश देतीं हैं।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह ग्रन्थ अवध प्रान्त के सांस्कृतिक परिवेश में लिखा गया है। इसमें अनेक जगहों पर बंगाल प्रेसिडेंसी को अलग माना गया है।

सन् 1872 ई. के प्रकाशित इस ग्रन्थ की हिन्दी भाषा में बहुत अन्तर तो नहीं है किन्तु विराम, अल्प विराम आदि चिह्नों का प्रयोग नहीं हुआ है जिसके कारण अनेक स्थलों पर आधुनिक हिन्दी के पाठकों को पढ़ने में असुविधा होगी। इसलिए यहाँ भाषा एवं वर्तनी को हू-ब-हू रखते हुए विराम-चिह्नों का प्रयोग कर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। पाठकों की सुविधा के लिए कुछ स्थलों पर अनुच्छेद परिवर्तन भी किए गये हैं। जिन शोधार्थियों को भाषा-शैली पर विमर्श करना हो, उन्हें मूल प्रकाशित पुस्तक देखना चाहिए, जो Rītiratnākara के नाम से ऑनलाइन उपलब्ध है।

अवध क्षेत्र में

19वीं शती की विवाह-विधि

जयंती का विवाह

एक दिन मोहनी बोली कि हे मैना बहिन हमने सुना है कि तुमने प्रयाग में जयंती का ब्याह बड़ी धूमधाम से किया है जो निकट होता तो हमलोग भी आती। क्या करें, परदेशवाली बात ठहरी, जब तुम्हारी चिट्ठी आई सब जनी हाथ मीज़ के रह गई। तुम्हारे लड़कों के ब्याह-गौना देखने की हम सब को बड़ी लालसा थी। भला जो आँख से नहीं देखा तो कान से तो सुनें। बतलाओ, किस प्रकार और किन किन रीतों के साथ जयंती का व्याह हुआ?

मैना बोली कि 'सुनो मोहनी! बहिन प्रथम तो जयंती के व्याह की कुछ चर्चा न थी जब जयंती आठ बर्ष की हो चुकी और नवें बर्ष का आरंभ हुआ, एक दिन हमारे घर पर लालाजी के ममेरे भाई सुखनंदन आये रहे। सो लालाजी और सुखनंदन जीमते थे, जब दाल तर्कारी से रोटी भात खा चुके तो लालाजी ने कहा कि जयंती, कुछ गोरस है?

जयंती बोली कि चाचाजी दही दूध दोनों हैं; परंतु आज का दही बहुत अच्छा जमा हुआ है। तब लालाजी ने सुखनंद से पूछा कि

कहो भाई कौन-सा गोरस मँगावें, उन्होंने कहा कि गोरस सभी अमृत है, जो चाहिये से मँगाइये। तब लालाजी ने कहा कि दही दूध दोनों विद्यमान हैं, पर जैसी आपकी रुचि हो। सुखनंदन ने कहा- "अच्छा तो दही मँगाइये।"

तब जयंती ने दोनों जनों को पाथर की कुंडियों में रखके दही दिया। उसी समय सुखनंदन ने लालाजी से पूछा कि 'कहो भाईजी! जयंती कितने वर्षों की हुई होगी? लालाजी ने कहा कि 'मुझे ठीक ठीक सुध तो नहीं है, पर इतना जानता हूँ कि आठ बर्ष पूरे हो गये हों वा दो एक महीने घटे बढ़े हों।' यह बात सुनकर चाचाजी ने कहा कि 'आठ बर्ष तो कभी हो गये अब नवां बर्ष लग रहा है।'

यह बात सुन सुखनंदन ने पूछा कि कहो इसके विवाह का कुछ शोच बिचार किया है कि नहीं। कन्या के विवाह के लिए यही तीन बर्ष अच्छे गिने जाते हैं। आठवाँ, नवाँ दशवां; क्योंकि आठवें वर्ष में गौरी, नवे में रोहिणी और दसवें में कन्या संज्ञा होती है। इसके उपरांत के वर्षों में विवाह को लोग मध्यम कहते हैं।'

यह बात सुन लालाजी बोले कि "हाँ आप परम्परा की बात कहते हैं, परंतु मेरे बिचार में लड़की का ब्याह छोटी अवस्था में करना अच्छा नहीं होता, पर क्या करें जो एक परिपाटी पड़ रही है, उसके आश्रित होना ही पड़ता है। अच्छा, अब आप भी आये हुए हैं, जैसा उचित हो, इस बात का भी सम्मत हो जायगा।

सुखनंदन बोले कि ऐसे कार्य में बिलम्ब न करना चाहिये। न जाने आज क्या है कल क्या हो, फिर जब दोनों जने जीम के उठे, तो पंडितजी को बुलवाके पूछा कि इसके बृहस्पति कैसे हैं?

पंडितजी ने कहा कि 'आजकल इसके पाँचवें बृहस्पति बहुत बली हैं। यह बर्ष विवाह के लिए बहुत शुभ है। फिर दो वर्ष तक विवाह न बनेगा।'

यह बात सुन लालाजी ने कहा कि इसका उपाय उतावली के साथ करना चाहिये। सुखनंदन बोले कि 'हाँ भाई, इसका उआदा तो अब घड़ी भर अच्छा नहीं; क्योंकि शुभकार्य में अनेक प्रकार के विघ्न खड़े हो जाते हैं।

"सबसे मुख्य तो लड़के का देखना है कि वह पढ़ा-लिखा, गुणवान् और शीलवान् सज्जन हो और शरीर से रिष्ट-पुष्ट और किसी रोग से ग्रसित न हो; क्योंकि संबंध का मूल कारण लड़का है।"

घर-वर का चयन कैसे किया जाता था?

अब यह शोचना चाहिये कि विवाह की बातचीत कहाँ की जाय; क्योंकि संबंध होने के समय चार पाँच बातों का बहुत विचार करना चाहिये। सबसे मुख्य तो लड़के का देखना है कि वह पढ़ा-लिखा, गुणवान् और शीलवान् सज्जन हो और शरीर से रिष्ट-पुष्ट और किसी रोग से ग्रसित न हो; क्योंकि संबंध का मूल कारण लड़का है। फिर कुल और घराना देखना चाहिये कि उसकी प्रतिष्ठा और भलमंसी जाति-बिरादरी में कैसी है और कुल में कोई अनविहित काम तो नहीं हो गया कि जिसका कलंक बना हो। फिर वर्तमान की व्यवस्था देखनी चाहिये कि आजकल उस घराने का चाल-चलन कैसा है? वृद्धि का आगम है वा हानि का। सबसे बड़ी कुलीनता तो मनुष्य के लिए विद्या और शुभ आचरण से सम्पन्न होना है, जो अनरीतें और खोटे कामों से डरता और फूँक-फूँक पाँव देता है और आगा-पीछा शोच के काम करता है। चार बात सह निकलता है (सहन कर लेता है), उतरा के नहीं चलता, वही कुलीन है। जैसी कहावत प्रसिद्ध है कि 'कुल कापड़ जुगए के हैं' अर्थात् बचाने से बचे रहते हैं, नहीं तो दोनों बिगड़ जाते हैं। सो सच है कि उज्जल वस्त्र और उज्जल कुल में बहुत शीघ्र दाग धब्बा लगने का डर रहता है। वस्त्र

भारत में 19वीं शती में लड़की का विवाह एक सामाजिक कर्तव्य था। एस अवसर पर कैसे समाज के सभी लोग हिल-मिलकर इस कार्य को सम्पन्न कराते थे, यह आज के समाज के लिए बहुत बड़ी सीख है। आज लोग व्यक्तिनिष्ठ और परिवारनिष्ठ होते जा रहे हैं, जो उन्हें समाज से तोड़ रहा है। परिवार की भी परिसीमा सिकुड़ती जा रही है। ऐसी स्थिति में 19वीं शती के विवाह की यह रीति हमारे लिए उपदेशप्रद है।

का कोई कोई दाग तो तुरंत भी छूट सकता है, परंतु कुल का दाग बहुत दिनों तक नहीं छूटता। जो ऐसा ही कोई सपूत जन्मे तो कुछ सुधरता है। इसलिए भाई, कहीं ऐसे कुल में लड़का ठहराओ कि जिससे आगे पीछे किसी प्रकार दूषण न निकले और धन-सम्पदा के विषय इतनी दृष्टि चाहिये कि वह भी अपने समान सामर्थ्यवान् गृहस्थ हो, क्योंकि व्याह और मिताई समान कुल में अच्छी होती है और यह भी ध्यान रहे कि समधी का घर न तो बहुत दूर हो और न बहुत निकट। बहुत दूर होने में यह आपत्ति होती है कि तुरंत क्षेम-कुशल का समाचार नहीं मिलता और आने-जाने वा कुछ वस्तु भेजने में कठिनाई रहती है और बहुत निकट रहने में एक यह बात अच्छी नहीं है। दोनों घर के सब भेद खुल जाते हैं और दुराचारी स्त्रियाँ तोड़-फोड़ लगा के बिगाड़ करा देती हैं और राति-दिन की भेंट-भलाई होते-होते कुछ आदरभाव भी जीर्ण हो जाता है और इसी प्रकार के दो-एक औगुन हैं। इसलिए समधी का घर मध्यम अंतर पर होना चाहिये कि दिन भर में पठवनियाँ जावे और वहाँ से लौट भी आवे।'

यह बात सुन सुखनंदन ने जन्मपत्री निकाल के दो-चार जगह बिधि मिलाई, तो गंता की विधि न मिली। तब लालाजी ने पंडित विद्याविलास और मितऊ नाई को बुलाके कहा कि पंडितजी आप भी दो एक स्थानों में जाके देख आइये, जो कहीं बिधि मिल जाय तो बड़ी बात हो।' यह सुनकर पंडित ने कहा कि 'बहुत अच्छा। कल हम इस कार्य के लिए जायेंगे।'

वर-देखी

निदान दूसरे दिन वर-देखी के लिए पंडित विद्याविलास मितऊ नाई को साथ लेकर गये। संयोग अच्छा रहा, चार ही पाँच कोश के अंतर में एक अच्छे गृहस्थ के घर लड़का ठहरा और उसका धन-ऐश्वर्य और भलमंसी देखकर पंडितजी का मन बहुत प्रसन्न हुआ और लड़का भी पढ़ा-लिखा बड़ा गुनवान् और स्वरूपवान मिला और राशि, वर्ग, गण, उसके साथ ठीक-ठीक बन गये और हमारे यहाँ का नाम-गाँव सुनके उसने कुछ दहेज का नियम नहीं बाँधा। कहा कि जो कुछ हमारे भाग्य में होगा सो मिलेगा।

बरछा देना

फिर हमने दो अशरफ़ी और पाँच बीड़ा पान और एक जोड़ी जनेऊ बरछा में भेजा। बरछा देने के समय 1) ब्राह्मण को दक्षिणा और 1) नाई को न्यवछावर मिली। फिर दूसरे दिन 2) बिदाई पाकर ब्राह्मण नाई विदा हुए।

तिलक

फिर उसके आठवें दिन तिलक भेजा गया। एक बड़ा भारी थार और कई थान कामदार और सादे कपड़े और मलयागिर चंदन और एक जोड़ी जनेऊ, पाँच गाँठ हरदी, और 1 नारियल फल और 1 चांदी का नारियल और पुंगीफल और चांदी-सोने की सुपारी और पीला चावल और ग्यारह बीड़ा पान और दो सौ रुपये रोकड़ थार में रखके पहिले भाई बिरादरी को बुलवा के

दिखाया; फिर ब्राह्मण, नाई आदि कई मनुष्य मिलके समधी के घर पर गये।

उसके आंगन में चोक चाँदनी हुई, तब तिलकहार बुलाये गये। प्रथम गोर-गणेश का पूजन हुआ। फिर पंडित ने बर के माथे में टीका लगाके तिलक की सब सामग्री हाथ में लेकर संकल्प दिया। तिसके पीछे ब्राह्मणों को दक्षिणा बाँटी गई और नाई-नाइन को न्यौछावर मिली। फिर बर सब सामग्री लेकर भीतर रख आया।

थोड़ी देर के पीछे तिलकहार और बिरादरी को जीमने के लिए उठाया। उस समय स्त्रियों ने गाली की गीते गाई। फिर दूसरे दिन तिलकहार बिदा हुए। उनको बारह रुपये बिदाई मिली।

लड़की की लग्नपत्री भेजना

फिर हमारे यहाँसे लग्नपत्री भेजी गई, जिसमें 1) और पाँच गाँठ हरदी और चांवल रख दिया गया और उसमें यह लिखा था कि फागुन बदि पंचमी को पाखान-पूजा और फागुन बदि छठि को मातृपूजा और फागुन बदि सप्तमी को बरयात्रा और उसी दिन राति को पाणिग्रहण और भौरी का मुहूर्त है।

मटिमगरा

जिस दिन लग्नपत्री गई, उसी दिन गीत कढा भई। उसीको मटिमगरा भी कहते हैं। मटिमंगला के दिन भाई -बंधु की स्त्री आनकर आँगन में बैठी। हमने पाँच क्वारी कन्याओं के तेल और सेंदुर लगाके उनको चावल और बतासे दिये और गाँव में चने की दाल और गुड़ देते हैं और सब भाई-बंधु, हित-मित्र, अड़ोसी-पड़ोसी की स्त्रियों के शिर में तेल-सेंदुर का शृङ्गार करके सबको चांवल और बतासे दिये। तब सब मिलके गाती हुई तलाब के तीरे मिट्टी लाने को गई। वहाँ पर गोरी की पूजा हुई। मान्य के लड़के ने मिट्टी खोदी। उसे 1 भेली गुड़ और चावल और 1 टका पैसा नेग मिला। फिर उस मिट्टी को लाके आँगन में रख दिया। फिर उसी मिट्टी में और भी मिट्टी मिला के होम के लिए अगेठी और मांई अर्थात् टिकिया काढ़ने के लिए छोटा चूल्हा बनाया गया।

मण्डप-निर्माण

इसके उपरांत हरे बाँस का माँडव गाड़ा गया और तम्बोली ने सरपत से छा दिया और माली बंधनवार बाँध गया और जो बाँस मंडप के बीच में गाड़ा गया। उसके साथ एक हेंगा और केले का पेड़ भी रक्खा गया और उसी जगह एक खंभा काठ का रंगा हुआ जिसमें भाँति-भाँति की चिड़ियाँ बनी हुई थी और दिया रखने के ठिकाने भी बने थे। बढ़ई गाड़ गया। उसे सवा रुपया नेग मिला। जिस समय माँडव गाड़ा जाने लगा, बीच के बाँस के नीचे एक टका पैसा सुपारी हरदी की गाँठ दूब नीचे रख दिया।

जब माँडव बन चुका तो नाइन ने ऐपन का पाँच छापा हाथ से उसी हेंगे पर लगा दिया और जितने पुरुष वहाँ रहे, सब की पीठों पर पाँच पाँच छापे लगाये गये।

इसके उपरांत 1 गगरा भर के तेल और एक कटोरा भर के पीला चाउर हरदी दूब और 5 और एक बनारसी धोती समधी के घर भेजी गई।

पाखानपूजा

इसके पीछे पाखान-पूजा की रीति-भाँति हुई। जिसको 'सिलपोहना' कहते हैं। इस में संपूर्ण स्त्रीगण शृंङ्गार और वस्त्र-भूषण आभूषित होकर आई हमें साथ लेकर सगरा के तीर तेल चढ़ाने के लिए गई। ऐपन सेंदुर से गौरी की पूजा हुई।

कोंची छेदना

फिर कोंची छेदी गई अर्थात् एक उड़द का छोटा बड़ा रख दिया गया। उसको मान्य के लड़के ने धनुही

में तीर लगाके छेद दिया। उसको 1 नेग मिला। उस समय सब स्त्रियाँ उस लड़के की मा-बहिन के नाम से गालियाँ गाने लगी। तब वह बेचारा लज्जित हो गया। फिर सात स्त्रियाँ अपने-अपने कोछ में थोड़ी-थोड़ी मिट्टी लेकर घर आई।

पूनपुनौती

तब पूनपुनौती हुई अर्थात् जो मिट्टी सगरे के तीर से लेती आई रहीं, वह परस्पर थोड़ी-थोड़ी मिट्टी एक ने दूसरे के कोंछ में रख दी। इसी अदले-बदले का नाम पून-पुनौती है।

फिर उसी मिट्टी से कलसा रखने की बेदी बनाई गई और कलसे को गोबर से कृष्णा बीबी ने गोंठ कर उसमें जवा खांस दिया। उन्हें कलसा गोंठने का 1 नेग मिला। इसके पीछे इस विधान से साठी मौरी गई कि एक बाँस की दोरी में धान-पान रखके हलदी से रंग के दो मूशल रक्खे गये। से हम और लालाजी को इस प्रकार साठी मौरना पड़ा कि जिस मूशल को धरके मैं घूम जाती थी, उसे लालाजी पकड़ लेते और लालाजी का मूशल पकड़ अपना छोड़ मैं घूमती। इसी प्रकार, जब पांच फेरे हो चुके, तो सिल-पोहना की रीति-भाँति होने लगी। दो सिल रक्खी गई, उनके दक्षिण उत्तर चार पत्तलों में पूड़ी और गुड़ रक्खा गया और सिल पर उड़द की भीगी दाल रक्खी गई। मैं सिल के पच्छिम और लालाजी सिल के पूर्व बैठे। दोनों जनों के सिर पर एक चुंदरी ओढ़ा दी गई, फिर दोनों जने इस प्रकार पीसते थे कि मैं थोड़ा पीसकर पच्छिम ओर उठ जाती, तो लालाजी पूर्व और उठ आते। इसी प्रकार पांच बार अदली-बदली हुई, परंतु लोढ़ा अपना-अपना हाथ से न छूटने पावता। जिस समय सिल पोहीं जाती थी, उस समय स्त्रियाँ गीत गाती थीं।

इस प्रकार जब हम दोनों जने दाल पीस चुके तो उस पिसी हुई दाल के दो भाग किये गये। आधा भाग उस चांवल के आटे में मिला के सोरह टिकियाँ बनाय तेल में काढ़ी गई जिसकी साठी मारी गई थी और आधे भाग से देवता न्योतने की मेटिया ताई गई और जो सिल के पास आठ पत्तल रक्खी रहीं। उनमें से एक पत्तल पण्डित को मिली और सब भाई-बंधुओं के यहाँ बाँटी गई।

जब यह कर्मठ हो चुका तो एक कुल्हिया में देवता का नाम लिखा गया दूसरी में पितर का नाम, फिर एक-एक पैसा सुपारी पान दोनों में छोड़े गये। फिर देई-देवता, आँधी-पानी, बाउ-बतास नेवतकर दोनों घड़ियों का मुँह उड़द की पीठी से बंद कर दिया कि जिस से कोई बाहर न निकले। इसके पीछे पण्डित ने कन्या से गौरि-गनेश की पूजा कराके उसके हाथ में कंकण बाँध दिया और उसकी अंजुली में चने की दाल और गुड़ रख दिया।

तब क्वारी कन्या आई। पहिले पण्डित ने दूब को तेल में डुबो के वहीं तेल कन्या के पाँव, गाँठ, कंधा, शिर में मन्त्र पढ़के लगा दिया और उसके हाथ का गुड़-दाल आप ले लिया। फिर दाल-गुड़ अंजुली में रक्खा गया और पाँच क्वारियों ने क्रम से दूब तेल में डुबो के पाँव, गांठ, कंधों में लगाकर चूमती गई और गुड़-दाल पाती गई। फिर नाइन ने देह भर में तेल लगा दिया और कन्या को कोहबर में ले गई। जिस समय कन्या तेल लगा के चूमती थी। यह गीत गाई गई-

"तेल चूमने बैठी हैं धेरिआ कोने राम बबवा कोने राम धिया भरि मुख दूब चम्बो भरिमुख दियो असीस।"

फिर पाँच सेर आटा गुड़ के सरबत में सान के उसकी (माईं) अर्थात् छोटी-छोटी टिकियाँ पोई गई। उसे बर्तन में रखकर सिलपाहना की पीठी से ताइ के कोहबर में रख दी गई।

-क्रमशः अगले अंक में जारी

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम- **व्याख्या**। लेखक- **मार्कण्डेय शारदेय**। प्रकाशक- सर्व भाषा ट्रस्ट, नई दिल्ली, जे-49, स्ट्रीट नं. 38, राजापुरी, मेनरोड, उत्तमनगर, नई दिल्ली- 110059, www.sarvbhashatrust.com पृष्ठ संख्या- 190, मूल्य- रु. 400/-। प्रथम संस्करण- 2022ई.

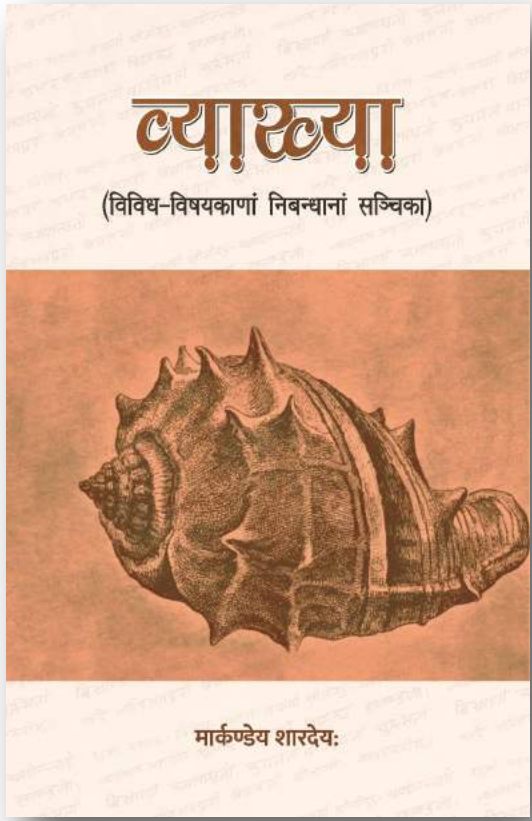

यह पुस्तक संस्कृत भाषा में लिखित 51 लघु-निबन्धों का संग्रह है। इन्हें विषयानुसार व्रतोत्सव, राष्ट्र-संस्कृति राष्ट्र-दर्शन, समाज-दर्शन, महाजन-मार्गदर्शन, काव्यशास्त्र-विनोद, हास्य-व्यङ्ग्य एवं ऋतुदर्शन —इन आठ खण्डों में बाँटा गया है।

इस पुस्तक पर डा. शशिनाथ झा, कुलपति कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय तथा डा. उमाशंकर शर्मा ऋषि, पूर्व विभागाध्यक्ष, पटना विश्वविद्यालय के द्वारा दी गयी अनुशंसा इस पुस्तक को गरिमामण्डित करती है।

लेखक हिंदी तथा भोजपुरी के प्रसिद्ध निबन्धकार हैं, किन्तु मूलतः ये संस्कृत भाषा एवं उसमें निबद्ध प्राचीन साहित्य के अध्येता रहे हैं। ज्योतिष, कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र, स्मृति, पुराण आदि के निविष्ट अध्येता के दैनिक अध्ययन-अध्यवसाय में नित्य कई प्रश्न सामने आते रहते हैं, जिनका उत्तर पाने का प्रयास चलता रहता है और जिस दिन उन्हें उत्तर मिल जाता है, उस दिन वे अध्येता इस बात के लिए बेचैन हो जाते हैं कि कैसे इसे समानधर्मा लोगों तक पहुँचाया जाये। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक के द्वारा लिखे गये ये सभी निबन्ध उसी बेचैनी के परिणाम हैं। इनमें कई तथ्य हैं जो लेखक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी लिखते रहते हैं। उन्हीं में से कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिन्हें संस्कृत भाषा के माध्यम से सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है।

इस पुस्तक में संकलित सभी निबन्ध सोद्देश्यक हैं। गीत में लय तथा छन्द आवश्यक है, किन्तु लेखक लोक में पाते हैं कि वहाँ अनेक स्थलों पर

लयहीनता की स्थिति आ जाती है, फिर भी वह लोकगीत चर्चित है। छठपूजा सूर्य की आराधना है तो छठी मैया कौन हैं? लेखक ने दो निबन्धों में पुराणों से प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि कार्तिकेय की पत्नी देवसेना छठी मैया हैं, जो प्रकृति के छठे अंश से उत्पन्न हुई हैं। सोनपुर में मेला लगता है, उसे हरिहर तीर्थ माना जाता है। पुराणों में गंगा तथा गण्डकी के संगम पर ऐसे विवरण का अभाव है। गज-ग्राह की कथा कही गयी है, पर वह सोनपुर की भौगोलिक स्थित से मेल नहीं खाता, तब लेखक ने वराह-पुराण के वर्णन के साथ दर्दरी क्षेत्र की उपस्थापना करते हैं और सोनपुर के हरिहर क्षेत्र को एक प्राचीन तीर्थ घोषित करते हैं। काव्य में अश्लीलता पर प्राचीन और आधुनिक विमर्श हुए हैं। भोजपुरी गीतों पर अश्लीलता का आरोप लगता है, लेखक अश्लीलता की परिभाषा ढूँढने का प्रयत्न करते हैं और भोजराज के 'सरस्वतीकण्ठाभरण' तक पहुँच जाते हैं और लिखते हैं कि जो अशोभनीय हो, गोपनीय हो उसका सार्वजनिक प्रकाशन अश्लीलता है। ब्रह्मा तथा सरस्वती के सम्बन्ध को लेकर विवाद उठाए जा रहे हैं। पुराणों में ब्रह्मा के सम्बन्ध में उक्त तथ्यों को अनैतिक दृष्टि से प्रचारित किया जा रहा है। लेखक ने इसकी संगति मत्स्यपुराण के आधार पर बैठायी है कि सृष्टि के आदि की कथा को हम आधुनिक संदर्भ में नहीं देख सकते हैं। दिवा और रात्रि के संयोग सन्ध्याकाल की तरह हमें ब्रह्मा तथा सरस्वती के संयोग को देखना चाहिए। अग्नीषोमात्मक इस जगत् में जहाँ जहाँ पुंस्त्व है, वहाँ ब्रह्मा हैं, जहाँ जहाँ स्त्रीत्व है वहाँ वहाँ सरस्वती हैं। मत्स्यपुराण कहता है कि ब्रह्मा वेद स्वरूप हैं और सावित्री उसकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इसलिए ब्रह्मा के सावित्री-गमन में कोई दोष नहीं है। भारतीय संस्कृति एवं परम्परा से सम्बद्ध ऐसे ज्वलंत प्रश्नों का उत्तर इन निबन्धों में ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है।

इस निबन्ध संग्रह के हास्य-व्यङ्ग्य प्रकरण में लेखक का कविहृदय स्फुट हो गया है। वे फेसबुक पर हुई मित्रता पर लिखते हैं कि हमारी परम्परा में एक व्यक्ति का मित्र बनना तथा एक को मित्र बनाने में एड़ी-चोटी एक करनी पड़ती है, क्योंकि मित्र के लिए कहे गये कर्तव्यों का पालन करना होता है। पर फेसबुक की मैत्री तो सहज सुलभ है।शोकप्रदर्शन तक केवल शेयर करने से मान लिया जाता है। वे मोबाइल पर चलनेवाले एप्प को कल्पतरु मान बैठते हैं- किं किं न साधयति कल्पतलेव एपः। दूसरे निबन्ध में वे पहली जनवरी के नववर्षारम्भ पर व्यङ्ग्य करते हैं। लेखक ने एक स्वयंवर सभा का वर्णन किया है, जहाँ जनता नेताओं के गले वरमाला डालती है, जी हाँ, चुनाव ही तो है यह स्वयंवर सभा! लेखक को अन्य चिन्ता सता रही है कि बेचारी स्तुति कुमारी ही रह जाएगी! स्तुति सज्जनों से प्रेम करती है, पर सज्जन को तो स्तुति चाहिए ही नहीं, दुर्जनों को इसकी जरूरत होती पर स्तुति उन्हें पसंद नहीं करती। आर्यासप्तशती के इस श्लोक पर लेखक ने विवेचना की है। इस संग्रह के दो निबन्ध नीलकण्ठ दीक्षित कृत कलि-विडम्बनम् पर आधारित हैं।

इस प्रकार सभी निबन्ध सरस हैं, भाषा अत्यन्त सरल है। यहाँ प्रयुक्त अधिकांश शब्द हिंदी में भी धड़ल्ले प्रयोग में हैं, जिनका अर्थ सभी जानते हैं। लेखक की विशेषता है कि उन्होंने सरलतम भाषा में अपनी सारी बात स्पष्ट प्रकट कर दी है। कुल मिलाकर पुस्तक रोचक है, पठनीय है।

***

महावीर मन्दिर समाचार

मन्दिर समाचार

(दिसम्बर, 2022ई.)

महावीर कैंसर संस्थान का स्थापना दिवस कार्यक्रम

महावीर मन्दिर, पटना के तत्त्वावधान में इस संस्थान की स्थापना दिसम्बर, 1998ई. में हुई थी।

महावीर मन्दिर की ओर से बच्चों के लिए देश का पहला कैंसर अस्पताल अगले साल

बच्चों के लिए पटना में 100 बेड का विशिष्ट कैंसर अस्पताल अगले साल के आखिर तक बनकर तैयार हो जाएगा। महावीर मन्दिर न्यास इसका निर्माण करा रहा है। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने सोमवार को महावीर कैंसर संस्थान के 24 साल पूरा होने पर आयोजित कार्यक्रम में यह घोषणा की। महावीर कैंसर संस्थान परिसर में आयोजित कार्यक्रम में आचार्य किशोर कुणाल ने कहा कि अगले साल 12 दिसंबर को महावीर कैंसर संस्थान के 25 साल पूरा होने पर बच्चों के कैंसर अस्पताल का उद्घाटन होगा। देश के दूसरे और बिहार सहित उत्तर भारत के सबसे बड़े कैंसर अस्पताल महावीर कैंसर संस्थान में कैंसर पीड़ित बच्चों के लिए अलग विभाग है। इसका उद्घाटन भूतपूर्व राष्ट्रपति स्व ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने किया था। आचार्य किशोर कुणाल ने कहा कि बच्चों के लिए कैंसर का अति विशिष्ट अस्पताल बच्चों से खास लगाव रखनेवाले कलाम साहब के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। उन्होंने बताया कि इस अस्पताल में कैंसर पीड़ित बच्चों के लिए खेलकूद और अन्य सुविधाएं भी होंगी। महावीर मन्दिर न्यास के इस कार्य में स्वयंसेवी संस्थाओं और अन्य लोगों का भी सहयोग मिल रहा है।

धर्मशाला का निर्माण

कार्यक्रम को संबोधित करते हुए आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि अगले साल की पहली तिमाही में महावीर कैंसर संस्थान की नयी धर्मशाला भी बनकर तैयार हो जाएगा। इसमें मरीजों के परिजनों को 100 रुपये में रहने की सुविधा

दी जाएगी। आचार्य किशोर कुणाल ने इस अवसर पर महावीर मन्दिर न्यास द्वारा संचालित सभी अस्पतालों में गरीब और अति गरीब मरीजों को इलाज के बिल में छूट देने की घोषणा की। छूट की राशि की भरपाई महावीर मन्दिर करेगा।

एमआरआई जांच सुविधा जल्द

इस अवसर पर महावीर कैंसर संस्थान के चिकित्सा अधीक्षक डॉ एल बी सिंह ने बताया कि महावीर कैंसर संस्थान में एमआरआई मशीन की खरीद जल्द हो जाएगी। इसके बाद मरीजों को एमआरआई जांच की सुविधा मिलने लगेगी।

अन्य अनेक सुविधाएँ

डॉ. एल बी सिंह ने महावीर कैंसर संस्थान में गरीब मरीजों को दी जानेवाली सुविधाओं के बारे में विस्तार से बताया। इसके साथ ही अस्पताल के चिकित्सकों एवं चिकित्सा कर्मियों से मरीजों के प्रति मृदुल व्यवहार करने और मरीजों को अधिक से अधिक मदद करने की अपील की। महावीर कैंसर संस्थान की चिकित्सा निदेशक डॉ. मनीषा सिंह ने एक साल की प्रगति रिपोर्ट प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि अस्पताल के विभाग लगातार उन्नति कर रहे हैं। अस्पताल में इलाज के लिए आनेवाले मरीजों की संख्या में उतरोत्तर बढ़ोत्तरी हो रही है। महावीर कैंसर संस्थान के निदेशक प्रशासन डा बी सान्याल ने धन्यवाद ज्ञापन देते हुए कहा कि तीन लीनियर एक्सेलेटर मशीनोंवाला महावीर कैंसर संस्थान देश का दूसरा कैंसर अस्पताल है।

आईएएस एसोसिएशन से महावीर वात्सल्य अस्पताल को मिले 30 ऑक्सीजन सिलेंडर और 5 कंसंट्रेटर, 01 जनवरी, 2023ई.

नये साल के आगमन पर आईएएस एसोसिएशन की बिहार इकाई ने मानवता की सेवा की पहल की है। पहली जनवरी को एसोसिएशन ने महावीर वात्सल्य अस्पताल को मरीजों के इलाज के लिए 30 ऑक्सीजन सिलेंडर, इतने ही रेगुलेटर और 5 ऑक्सीजन कंसंट्रेटर दिया। आईएएस भवन परिसर में आयोजित सादे समारोह में मुख्य सचिव आमिर सुबहानी, पूर्व मुख्य सचिव अशोक कुमार चौधरी और पूर्व वरिष्ठ आईएएस अधिकारी राम उपदेश सिंह ने महावीर वात्सल्य अस्पताल के निदेशक डॉ निहार रंजन विश्वास और अपर निदेशक राम बहादुर यादव को ऑक्सीजन सिलेंडर और उपकरण प्रदान किये। इस अवसर पर आईएएस एसोसिएशन, बिहार के सचिव और शिक्षा विभाग के अपर मुख्य सचिव दीपक कुमार सिंह, पूर्व मुख्य सचिव अशोक कुमार सिन्हा, पूर्व राज्य निर्वाचन आयुक्त अशोक कुमार चौहान, पूर्व वरिष्ठ आईएएस अधिकारी एम ए इब्राहिमी समेत आईएएस एसोसिएशन के कई वरिष्ठ सदस्य और पदाधिकारी मौजूद थे। मुख्य सचिव आमिर सुबहानी ने इस अवसर पर कहा कि कोरोना महामारी के दौर में ऑक्सीजन सिलेंडर मरीजों के लिए अंतिम उम्मीद साबित हुए

थे। लाखों लोगों की जिन्दगी ऑक्सीजन सिलेंडरों और ऑक्सीजन कंसंट्रेटर की सहायता से बची थी। महावीर वात्सल्य अस्पताल समेत महावीर अस्पतालों की सेवा भावना और मरीजों के प्रति संवेदनशीलता को देखते हुए अस्पताल को ये जीवनरक्षक उपकरण दिए गए हैं। आईएएस एसोसिएशन के सचिव दीपक कुमार सिंह ने कहा कि महावीर वात्सल्य अस्पताल में गंभीर मरीजों के इलाज में ऑक्सीजन सिलेंडर बहुत कारगर होंगे। उन्होंने कहा कि कोरोना संक्रमण की एक बार फिर बढ़ती आशंकाओं को देखते हुए आईएएस एसोसिएशन ने ऑक्सीजन सिलेंडर और कंसंट्रेटर दिए हैं। उन्होंने उम्मीद जताते हुए कहा कि महावीर वात्सल्य अस्पताल जरूरतमंद मरीजों के इलाज में ऑक्सीजन सिलेंडरों का पूरा सदुपयोग करेगा। महावीर वात्सल्य अस्पताल के निदेशक और अपर निदेशक ने आईएएस एसोसिएशन की इस मानवीय पहल के लिए उनके प्रति आभार जताया है। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने आईएएस एसोसिएशन द्वारा परोपकार की इस पहल का स्वागत करते हुए कहा है कि इससे एक ओर जहाँ जरूरतमंद मरीजों के इलाज में मदद मिलेगी वहीं दूसरे लोग एवं अन्य संस्थाएं भी इससे प्रेरित होंगे।

01 जनवरी, 2023 को महावीर मन्दिर में श्रद्धालुओं की अपार भीड़

मध्य रात्रि से ही लगी भक्तों की कतार, दो दिनों में 15 हजार किलो से ज्यादा बिका नैवेद्यम्

अंग्रेजी नववर्ष की मंगलकामना लिए महावीर मन्दिर में भक्तों का हुजूम 2023 की पहली तारीख को उमड़ पड़ा। स्त्री -पुरुष, युवा-वृद्ध सभी अपने अराध्य हनुमानजी की एक झलक पाने और अपनी मनोकामना पूर्ति की प्रार्थना लिए पंक्तिबद्ध होकर अनुशासित भाव से महावीर मन्दिर आ रहे थे। मध्य रात्रि से ही भक्तों की कतार लग गयी थी। सुबह 5 बजे हनुमानजी की जागरण आरती हुई। उसके बाद भक्तों के प्रसाद चढ़ाने और दर्शन का सिलसिला शुरू हो गया जो रविवार देर रात्रि तक जारी रहा। सुबह 11 बजे की आरती के समय भक्तों की कतार वीर कुंवर सिंह तक जा पहुंची। भक्तों की सुविधा के लिए पटना पुलिस के जवान और पदाधिकारी लगाये गये थे। महावीर मन्दिर की ओर से एक सौ निजी सुरक्षाकर्मी और कार्यकर्ता तैनात थे। विधि-व्यवस्था और भीड़ नियंत्रण के लिए जिला प्रशासन की ओर से महावीर मन्दिर में दंडाधिकारी तैनात किये गये थे। भक्तों को कोई असुविधा न हो इसके लिए महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल स्वयं दिनभर मन्दिर परिसर में रहकर प्रबंध देखते रहे। आचार्य किशोर कुणाल ने नववर्ष पर भक्तों के कल्याण की कामना करते हुए बताया कि शनिवार को साढ़े पांच हजार किलो नैवेद्यम की बिक्री हुई। रविवार को देर रात तक साढ़े 10 हजार किलो नैवेद्यम की बिक्री हुई। उन्होंने बताया कि धर्म को अस्पतालों के जरिए परोपकार से जोड़ने के कारण महावीर मन्दिर में भक्तों की आस्था बढ़ती जा रही है। पहली जनवरी को लगभग दो लाख भक्तों के महावीर मन्दिर पहुँचने का अनुमान किया गया है। हनुमानजी के दो विग्रहोंवाले प्रसिद्ध महावीर मन्दिर में देर रात तक भक्त जय श्रीराम के नारों के साथ दर्शन-पूजन के लिए आते रहे।

गर्भगृह और भीतर प्रवेश द्वार फूलों से सजा था

नये साल के आगमन पर महावीर मन्दिर के गर्भ गृह को रंग-बिरंगे फूलों से आकर्षक रूप से सजाया गया था। गर्भगृह में हनुमानजी के दोनों विग्रह और रामदरबार की शोभा देखते बन रही थी। जबकि मन्दिर के भीतरी प्रवेश द्वार को गेंदे के फूलों से बहुत सुन्दर तरीके से सजाया गया था। मान्यता है कि हनुमानजी को गेन्दे का फूल बहुत पसंद है। महावीर मन्दिर आनेवाले भक्तों को मन्दिर परिसर में शीत और ठंढ से बचाव के लिए अस्थाई पंडाल का निर्माण किया गया है।

महावीर मन्दिर में रामनाथ कोविन्द ने सपरिवार किया हनुमत् कवचम् का पाठ

45 मिनट हनुमान दरबार में रहे पूर्व राष्ट्रपति, आरती में भी हुए शामिल

पूर्व राष्ट्रपति रामनाथ कोविन्द लगातार दूसरे साल पटना के महावीर मन्दिर आए। पूर्वी द्वार पर महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने पत्नी सविता कोविन्द और पुत्री स्वाति कोविन्द के साथ पहुंचे रामनाथ कोविन्द का स्वागत किया। वहाँ से कोविन्द सपरिवार मुख्य गर्भगृह पहुंचे। हनुमानजी के दोनों विग्रहों के दर्शन किए, सिर नवाया। महावीर मन्दिर के पुजारी ब्रह्मदेव दास और अवधेश दास ने उन्हें शाॅल भेंट किया। चंदन-टीका भी लगाया। आचार्य किशोर कुणाल ने पुरोहित बनकर कोविन्द परिवार को महावीर मन्दिर से प्रकाशित हनुमत् कवचम् का पाठ कराया। आनन्द रामायण से उद्धृत हनुमत् कवचम् का पाठ पूरा होते आरती का समय हो चला। रामनाथ कोविन्द ने सपरिवार पूरे भक्तिभाव से ढोल-नगाड़े और घंटे की ध्वनियों के बीच मनोकामना पूरन हनुमानजी का ध्यान किया। फिर आरती ली और पत्नी-पुत्री समेत गर्भगृह की परिक्रमा की। इस अवसर पर महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने पूर्व प्रथम महिला सविता कोविन्द को माता जानकी उद्भव की प्रतीक प्रतिमा भेंट की। थोड़ी फुर्सत हुई तो रामनाथ कोविन्द ने आचार्य किशोर कुणाल से महावीर मन्दिर न्यास की ताजा गतिविधियों की जानकारी चाही। किशोर कुणाल ने हनुमानभक्त रामनाथ कोविन्द को बच्चों के इलाज के लिए बन रहे नये कैंसर अस्पताल, वरिष्ठ नागरिकों के लिए शुरू हो रहे नये विशिष्ट अस्पताल और सीतामढ़ी के पुनौराधाम स्थित जानकी कुंड में बननेवाले जानकी जन्मस्थान मन्दिर की जानकारी दी। महावीर मन्दिर न्यास की ओर से ये कार्य किये जा रहे हैं। हनुमानजी के दोनों विग्रहों का इत्मीनान से दर्शन, पूजन और ध्यान से भावविभोर रामनाथ कोविन्द ने कहा कि राज्यपाल रहते महावीर मन्दिर में आता था। राष्ट्रपति बनने के बाद भी आया। फिर जब-जब मौका मिलेगा आता रहूँगा।

राष्ट्रपति के रूप में रामनाथ कोविन्द पिछले साल 22 अक्तूबर को महावीर मन्दिर आए थे। तब भी सुबह तख्त श्री हरमन्दिर साहिब गुरुद्वारा में माथा टेकने के बाद आए, इस बार भी वैसा ही हुआ। राष्ट्रपति के रूप में पहली बार आए रामनाथ कोविन्द तब महावीर मन्दिर में 20 मिनट रुके थे। इस बार 45 मिनट से अधिक समय तक रहे। इस बार मन्दिर का निचला तल और मन्दिर का बाहरी परिसर भक्तों से खाली रखा गया था। आते और ज्यादा समय उन्होंने मन्दिर के बाहर और मन्दिर के ऊपरी तल्लों पर मौजूद भक्तों और नागरिकों का अभिवादन किया। बिहार का राज्यपाल रहते हुए रामनाथ कोविन्द अक्सर महावीर मन्दिर आया करते थे। आखिरी बार मन्दिर में पूजन के कुछ ही दिन बाद एनडीए के राष्ट्रपति उम्मीदवार के रूप में उनकी घोषणा हो गयी। शायद यही वजह रही कि पिछले साल महावीर मन्दिर दर्शन-पूजन को आए रामनाथ कोविन्द ने यहाँ विराजमान हनुमानजी को मनोकामना पूरन बताया था।

-(महावीर के मीडिया प्रभारी श्री विवेक विकास की कलम से)

व्रत-पर्व

माघ, 2079 वि. सं. (7 जनवरी से 5 फरवरी 2023ई.)

पं. मुक्ति कुमार झा
ज्यौतिष परामर्शदाता, महावीर ज्योतिष मण्डप, महावीर मन्दिर, पटना

1. माघकृष्ण प्रतिपदा शनिवार, कमलास्नानं पुण्यप्रदं, दिनाकं 07.01-2023।
2. माघकृष्ण तृतीया उपरि चौठ मंगलवार, श्रीभालचन्द्र चतुर्थी दिनांक 10-01-2023।
3. माघकृष्ण सप्तमी शनिवार, श्रीरामानन्दाचार्यजयन्ती दिनांक 14-01-2023।
4. माघकृष्ण अष्टमी रविवार, मकर संक्रान्ति पुण्यकाल दिवा 12 बजे यावत् दिने, दिनांक 15-01-2023,
   इस वर्ष सुबह 06:45 से दोपहर 12:00 वजे तक पुण्यकाल का समय है। इस दिन प्रातः स्नान कर तिल, तिल से बने पदार्थ तथा दही का भोजन करना चाहिए। तिल दान करनेका भी विधान है। मिथिला में खिचड़ी, दही, तिलबा, चूड़ा और मूढ़ी का लाई तथा मगध में चूड़ा, दही, शक्कर की चूरण भूरा, तिलकूटआदि खाने की परम्परा है।
5. माघकृष्ण एकादशी बुधवार, षट्तिला एकादशी, दिनांक 18-01-2023।
6. माघकृष्ण द्वादशी उपरी त्रयोदशी गुरुवार, प्रदोष त्रयोदशी व्रतं दिनाकं 19-01-2023।
7. माघकृष्ण त्रयोदशी उपरी चतुर्दशी शुक्रवार, प्रदोष चतुर्दशी व्रतं, नरक निवारण चतुर्दशी, दिनाकं 20-01-2023।
8. माघकृष्ण आमावश्या शनिवार, मौनी आमावस्या, दिनाकं 21-01-2023।
9. माघशुक्ल प्रतिपद तिथि रविवार, माघी नवरात्र का कलशस्थापनं, दिनाकं 22-01-2023।
10. माघशुक्ल चतुर्थी बुधवार श्रीगणेश चतुर्थी व्रतं, दिनाकं 25-01-2023।
11. माघशुक्ल पंचमी गुरूवार, वसन्त-पञ्चमी, श्रीसरस्वती-पूजा, भारतीय गणतत्रं दिवस, दिनांक 26-01-2023।
12. माघशुक्ल सप्तमी शनिवार, अचला सप्तमी, रथ सप्तमी, दिनांक 28-01-2023।
13. माघशुक्ल अष्टमी रविवार, माघी नवरात्र की महाष्टमी व्रत, दिनांक 29-01-2023।
14. माघशुक्ल नवमी सोमवार, माघी नवरात्र की महानवमी व्रत, दिनांक 30-01-2023।
15. माघशुक्ल दशमी मंगलवार, माघी नवरात्र की विजय दशमी, दिनांक 31-01-2023।
16. माघशुक्ल एकादशी बुधवार भौमी एकादशी, दिनांक 01-02-2023। (गृहस्थ एवं वैष्णव-दोनों के लिए)।
17. माघशुक्ल द्वादशी गुरुवार एकादशी व्रत का पारण गाय के दुध से दिनांक 02-02-2023।
18. माघशुक्ल त्रयोदशी शुक्रवार, त्रयोदशी व्रतं, दिनांक 03-02-2023।
19. माघशुक्ल चतुदर्शी शनिवार, चतुदर्शी व्रतं, दिनांक 04-02-2023।
20. माघशुक्ल पूर्णिमा रविवार, स्नानदान, पूर्णिमा व्रतं, रविदास जयन्ती, दिनांक 05-02-2023

***

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य– 'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय' इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तों को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

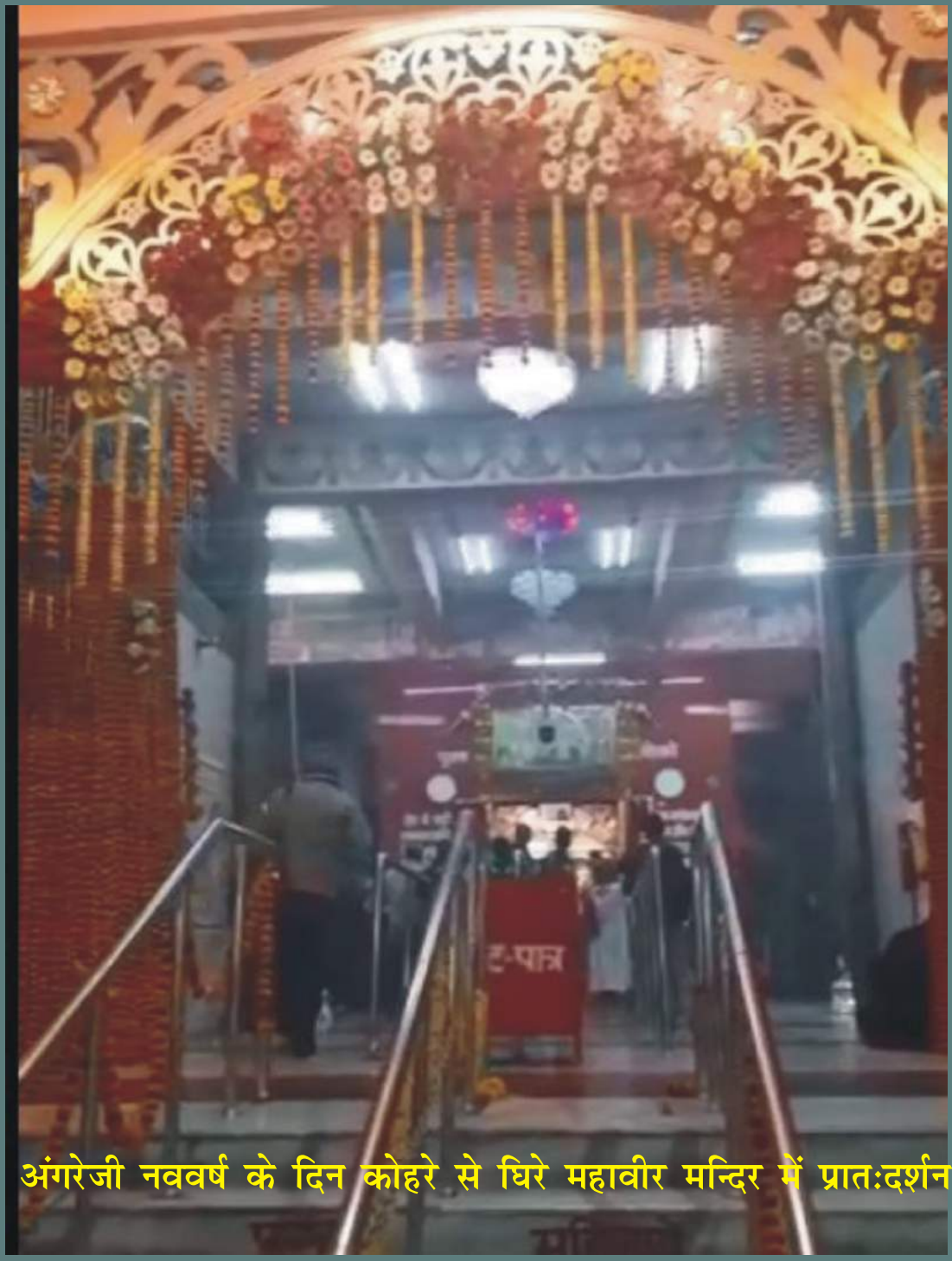

अंगरेजी नववर्ष के दिन कोहरे से घिरे महावीर मन्दिर में प्रातःदर्शन

पत्रिका-पंजीयन सं. 52257/90

विक्रम संवत् 2079 में प्रकाशित 'धर्मायण' के विशेषांक

सभी अंक *online* उपलब्ध हैं-

https://mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

श्री महावीर स्थान न्यास समिति के लिए वीर बहादुर सिंह, महावीर मन्दिर, पटना- 800001 से ई-पत्रिका के रूप में https://mahavirmandirpatna.org/dharmayan/ पर निःशुल्क वितरित। सम्पादक : भवनाथ झा।